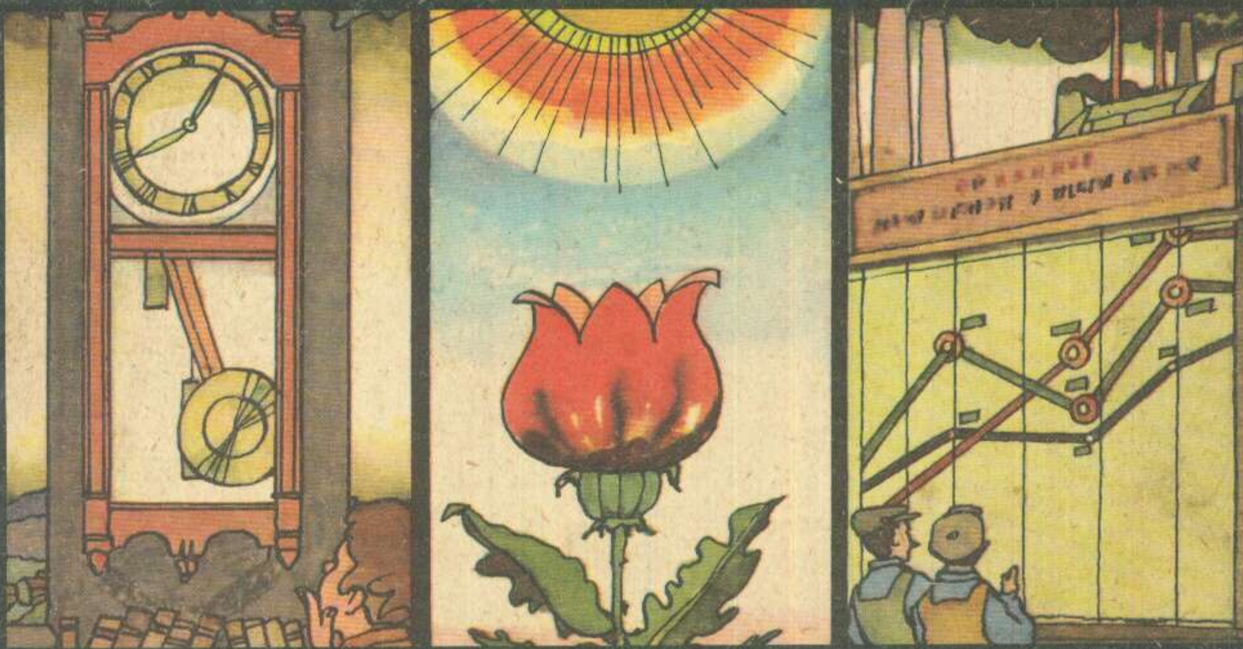
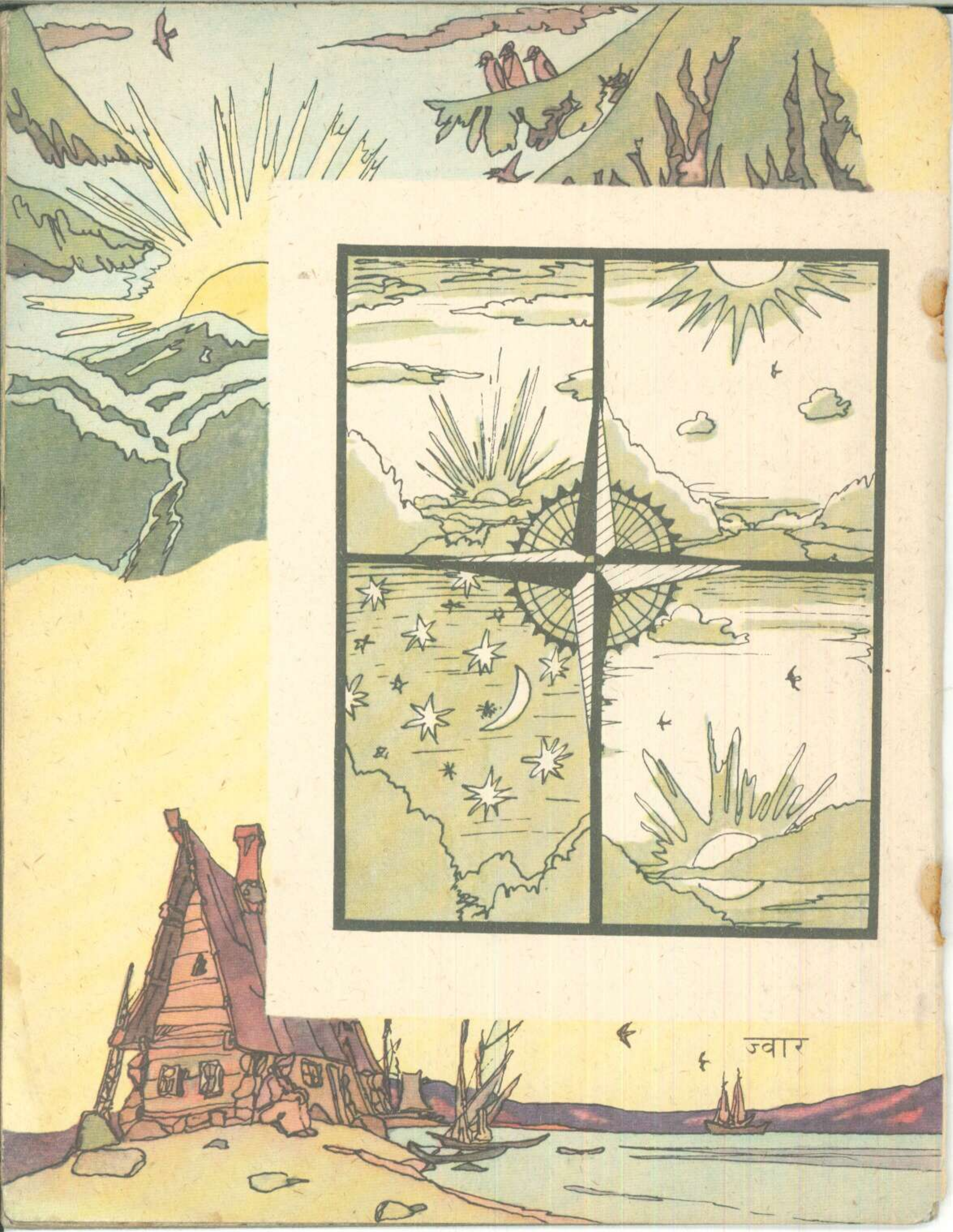
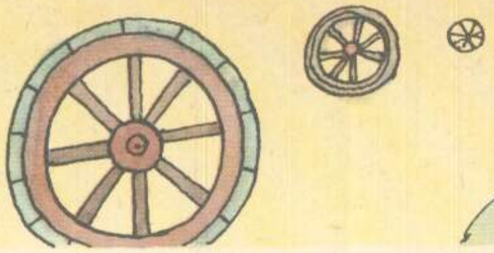
बरीस ज़ुब्कोव

कल, आज और कल

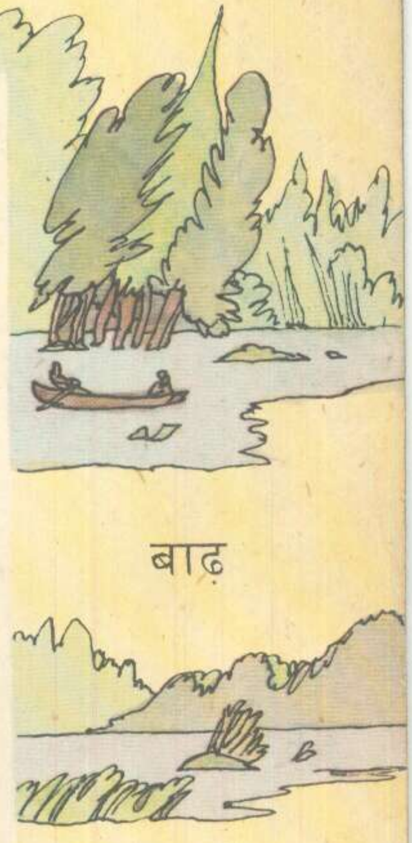


बाल लोक प्रकाशन


ज्वार



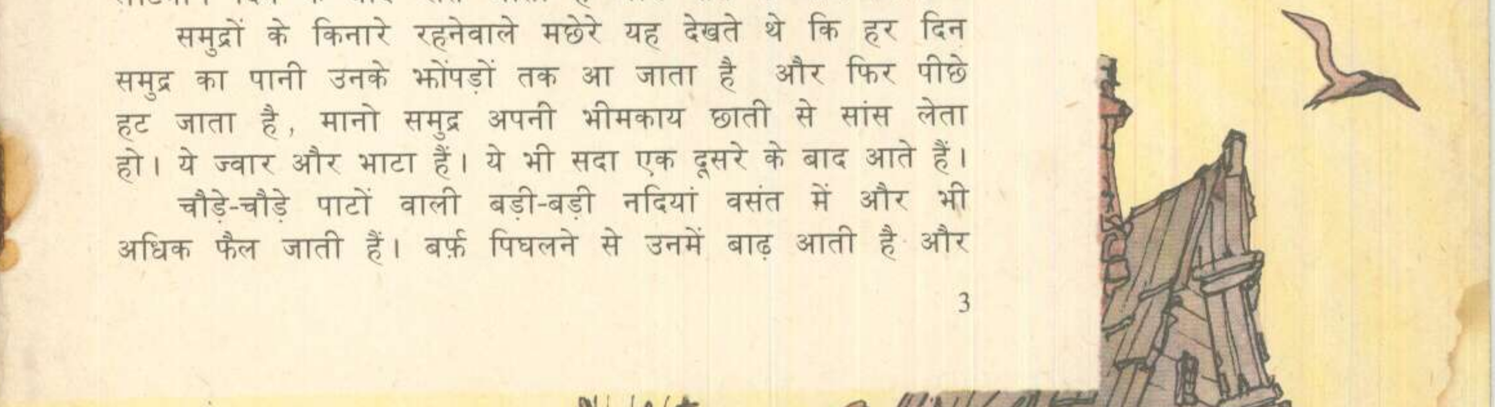
हर दिन क्या होता है और पूरे चंद्रमा के दिन को पूर्णमासी क्यों कहते हैं।

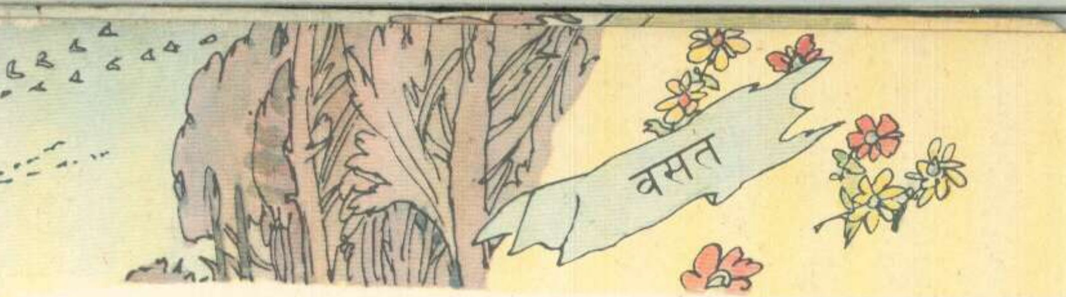


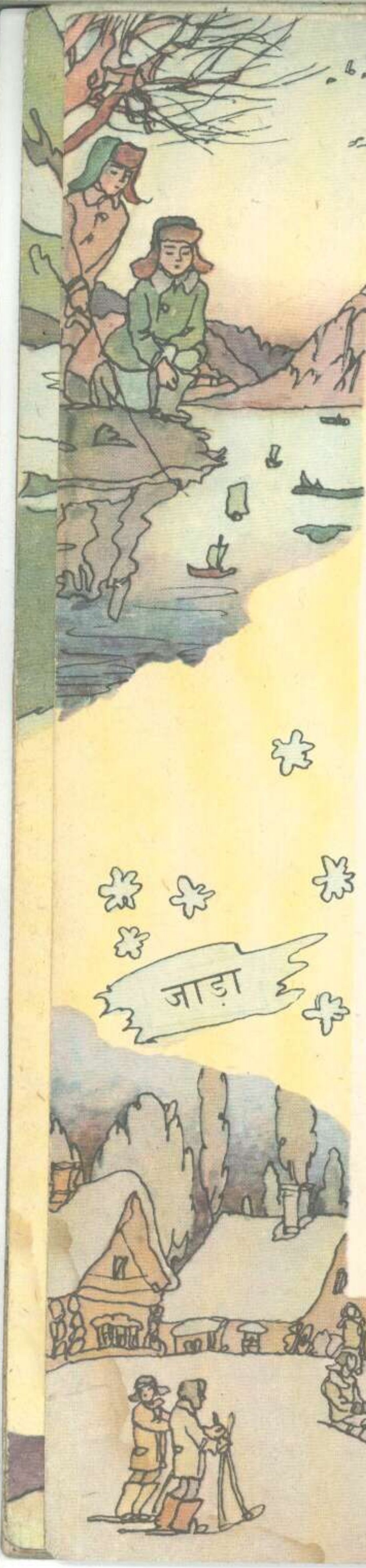
सुबह तड़के जंगल के पीछे से, पहाड़ों के पीछे से सूरज अपना चेहरा दिखाता है। सारा दिन वह आकाश में विचरता रहता है और शाम को छिप जाता है, अपने साथ उजाला और गरमी भी ले जाता है। बहुत-बहुत पहले ऐसा होता था कि हर बार जब सूरज डूबता था, तो आदमी डर जाता था और घबराते हुए सोचता था : "कहीं यह सदा के लिए तो नहीं चला गया? फिर न लौटा तो?" लेकिन फिर बरसों तक यह देखते हुए कि कैसे सदा दिन के बाद रात आती है, आदमी समझने लगा : सूरज अवश्य ही लौटेगा। दिन के बाद रात आती है और रात के बाद दिन।

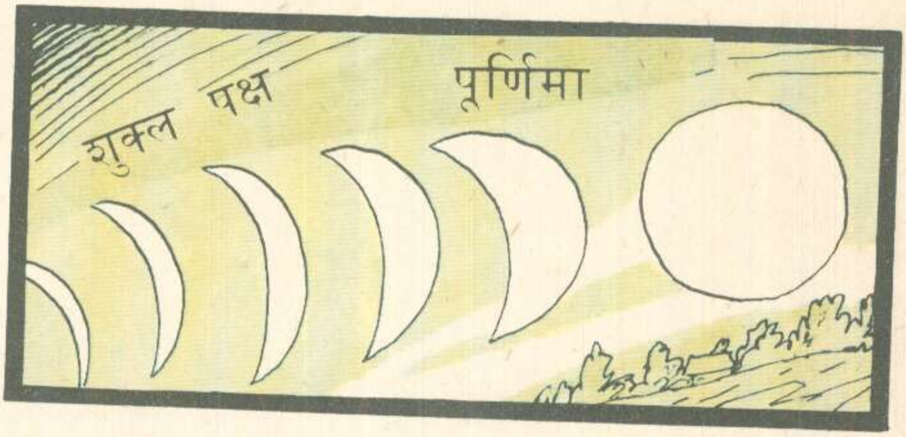
समुद्रों के किनारे रहनेवाले मछेरे यह देखते थे कि हर दिन समुद्र का पानी उनके झोंपड़ों तक आ जाता है और फिर पीछे हट जाता है, मानो समुद्र अपनी भीमकाय छाती से सांस लेता हो। ये ज्वार और भाटा हैं। ये भी सदा एक दूसरे के बाद आते हैं।

चौड़े-चौड़े पाटों वाली बड़ी-बड़ी नदियां वसंत में और भी अधिक फैल जाती हैं। बर्फ़ पिघलने से उनमें बाढ़ आती है और









यह बाढ़ खेतों में काई लाती है। जिन खेतों में काई फैल जाती है, उनमें फसल अच्छी होती है। सो आदमी यह देखता था कि कितनी देर-देर बाद बाढ़ आती है, वह बाढ़ आने की प्रतीक्षा करता था।

रात के बाद दिन आता है। समुद्र में ज्वार के बाद भाटा और भाटे के बाद ज्वार आता है। ऋतुओं का पक्का क्रम है। स्वयं प्रकृति इस तरह कुछ गिनती लगती है न?.. क्या?

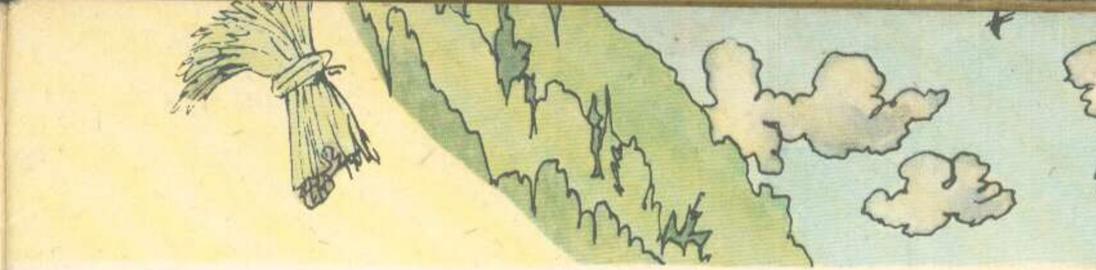
समय!

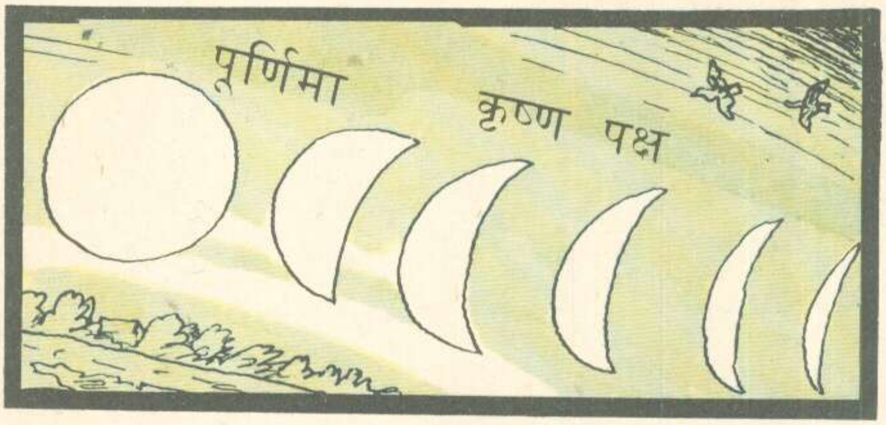
गर्मियां बीतती हैं, फिर से जाड़ा आता है। पर यह नया जाड़ा है, वह नहीं, जो पिछले साल आया था। और "आज" का दिन भी वह नहीं है, जो "कल" था। कल ... आज ... कल ... समय कभी लौटता नहीं। समय आगे बढ़ता है। आगे ही आगे!

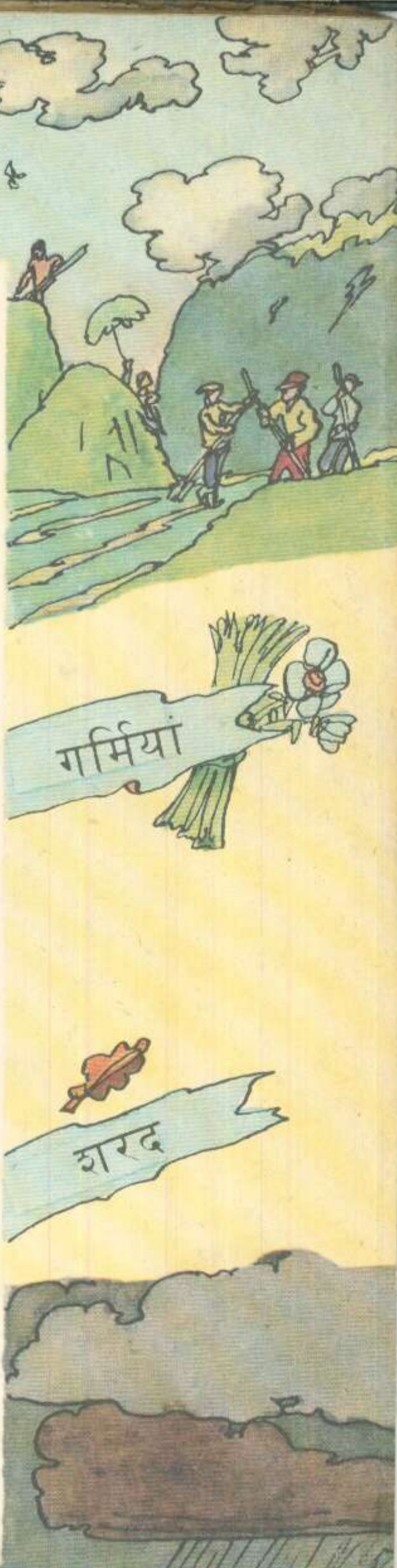
और समय का हिसाब रखने का सबसे आसान तरीका है उन घटनाओं को याद रखना, जो प्रकृति में अवश्य ही एक क्रम में होती हैं।

देखो, नव चंद्र दिन पर दिन बढ़ता जाता है और आखिर चांदी







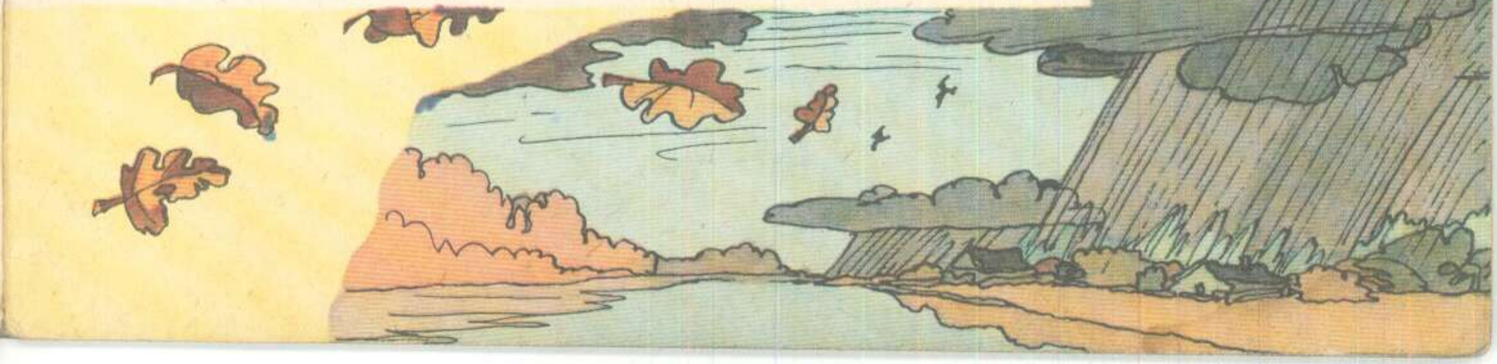


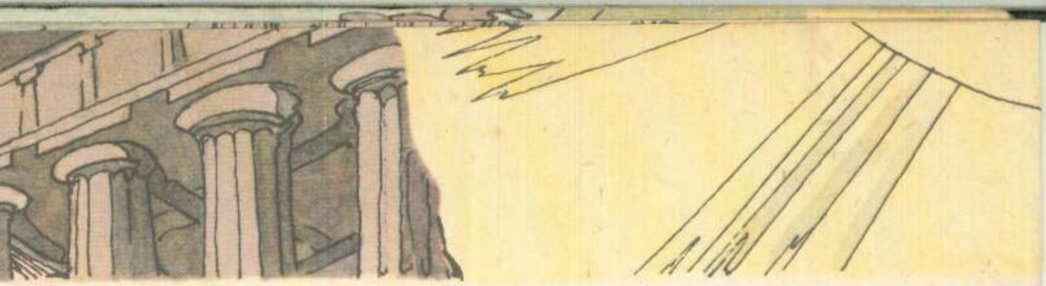
की थाली जैसा पूर्ण चंद्रमा बन जाता है। इस दिन को पूर्णिमा कहते हैं। पुराने ज़माने में लोग पूर्णिमा का त्योहार मनाते थे। इस तरह वे समय का हिसाब रखते थे। पूर्णिमा से पूर्णिमा तक पूरा एक महीना हुआ। इसीलिए पूर्णिमा को पूर्णमासी भी कहते हैं – पूर्णमासी यानी पूरा मास, पूरा महीना।

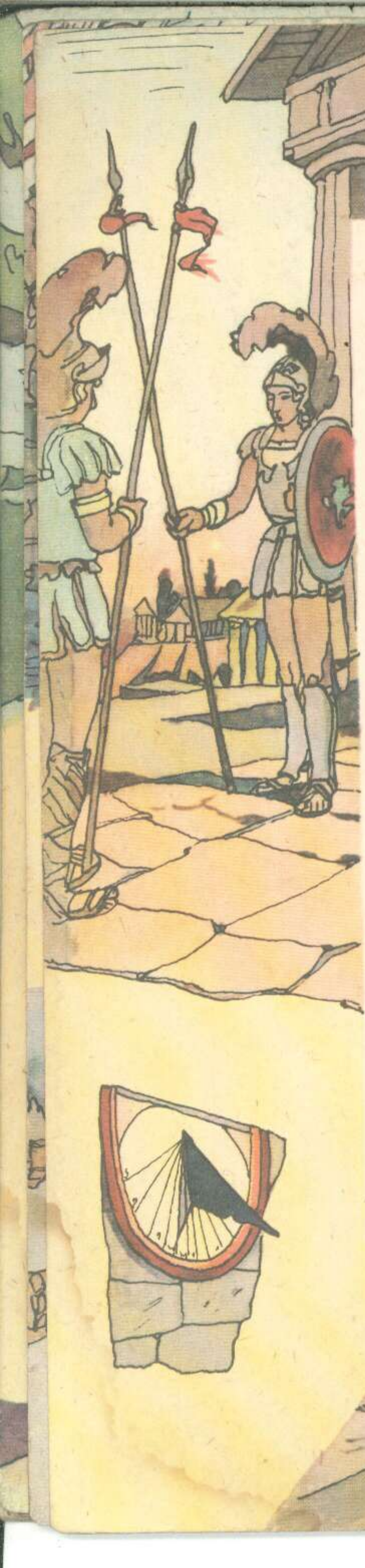
पुराने ज़माने में जो लोग एक दूसरे से बहुत दूर रहते थे उनके बीच कोई सम्पर्क नहीं था। पर सब लोग जानते थे: "धूप में गरमाहट आने लगी है। ज़मीन जोतने का समय आ गया!" या "ठंडे दिन आ रहे हैं। फसल काट लेनी चाहिए, लकड़ियां जमा कर लेनी चाहिए।"

लोगों को ऋतुओं का ज्ञान था। समय का पता था। और यह ज्ञान लोगों को एक सूत्र में पिरोता था। वे अलग-अलग रहते थे, पर समय उनसे कहता था: "सबके लिए सूरज निकलता है! तुम सब एक ही ग्रह पर रहते हो!"

समय लोगों को एक सूत्र में पिरोता है।







कैसे लोगों ने समय मापना सीखा, वह कौन सी घड़ी है, जो आसमान में चलती है, तोप दागती है और शहर में दौड़ती भी है।

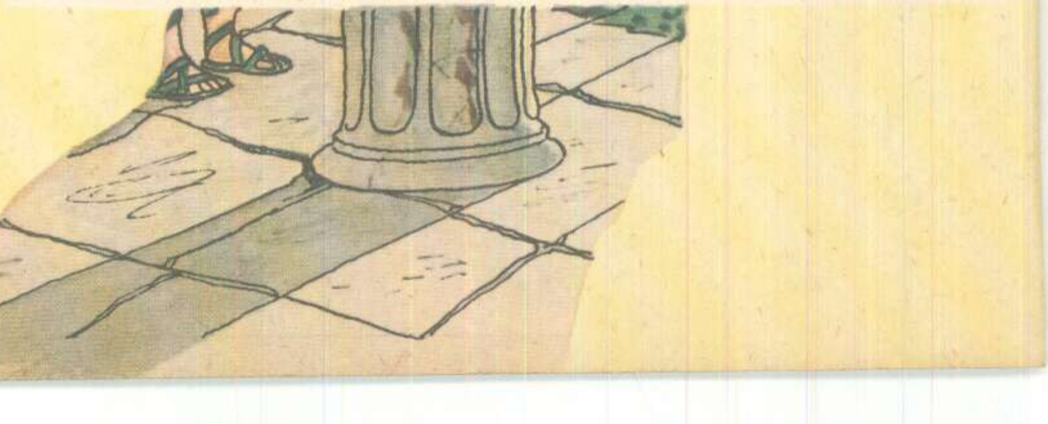
एक आदमी दूसरे से मिलने जा रहा है – उसे भेंट का समय ठीक-ठीक पता होना चाहिए। प्रहरी पहरा दे रहा है, उसे यह पता होना चाहिए कि कब उसका स्थान दूसरा प्रहरी लेगा। सो, समय ठीक-ठीक मापना चाहिए। पर कैसे समय मापा जाए?

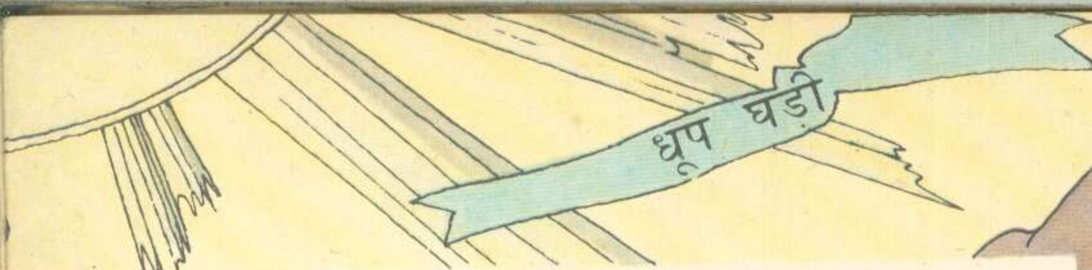
लोगों ने देखा कि सूरज आकाश में चलता है और धरती पर पेड़ की परछाईं भी उसके पीछे-पीछे चलती है। इस तरह सूरज ने आदमी को मानो बताया: "**धूप घड़ी** बनाई जा सकती है!"

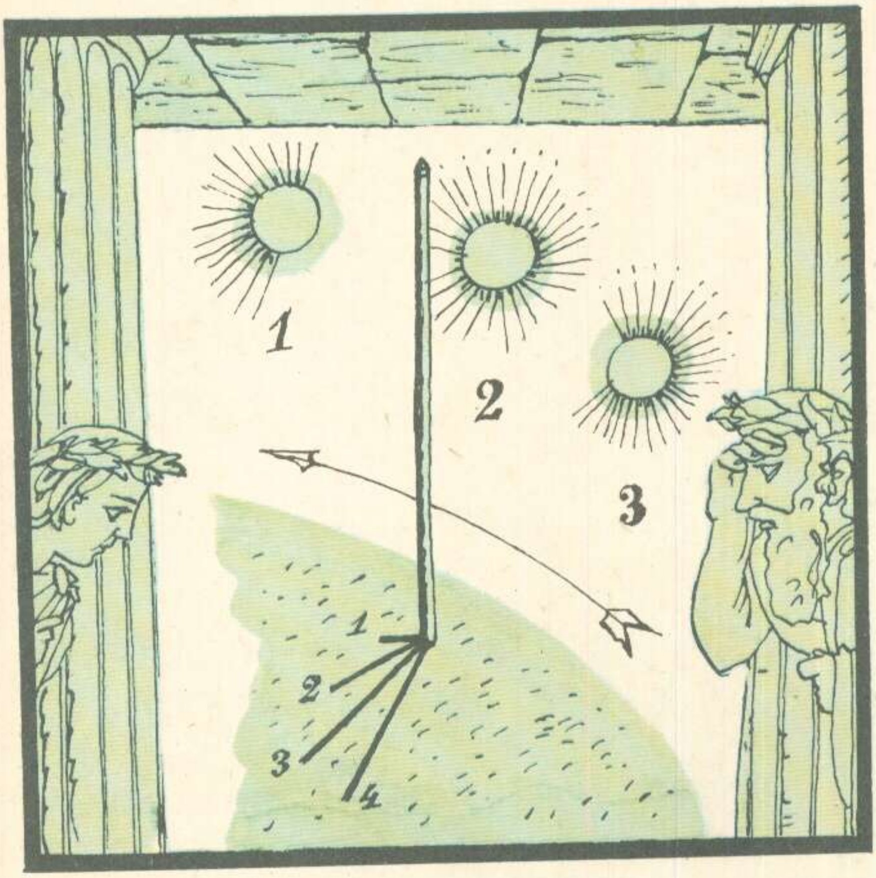
धूप घड़ी का भी डायल होता था, जिस पर एक से बारह तक गिनती लिखी रहती थी, बिल्कुल आजकल की घड़ियों की ही भांति। बस सुइयों का काम डंडी या तिकोन की परछाईं करती थी। सूरज आकाश में चलता जाता और उसके पीछे-पीछे परछाईं भी डायल पर खिसकती जाती, समय बताती।

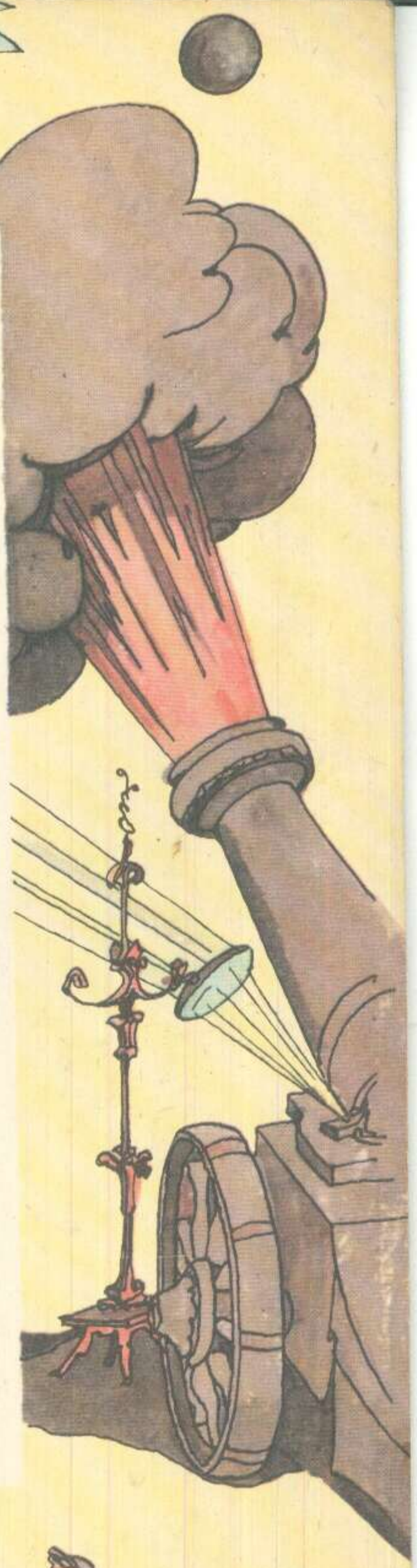
यूनान के एथेंस नामक नगर में बड़े चौराहे पर नगर की एकमात्र धूप घड़ी लगी हुई थी। और नगर में घड़ी वाले दौड़ते थे। हां, तब ऐसे लोग होते थे, जिनका काम ही था दौड़ते हुए नगर के चक्कर लगाते रहना और जो कोई पूछे उसे समय बताना। ऐसा आदमी चौराहे पर जाकर देखता कि कितने बजे हैं और फिर नगर में दौड़ने लगता, लोग एक छोटा सिक्का देकर उससे समय पूछते।

तो, ऐसी थी यह नगर में दौड़ती घड़ी।







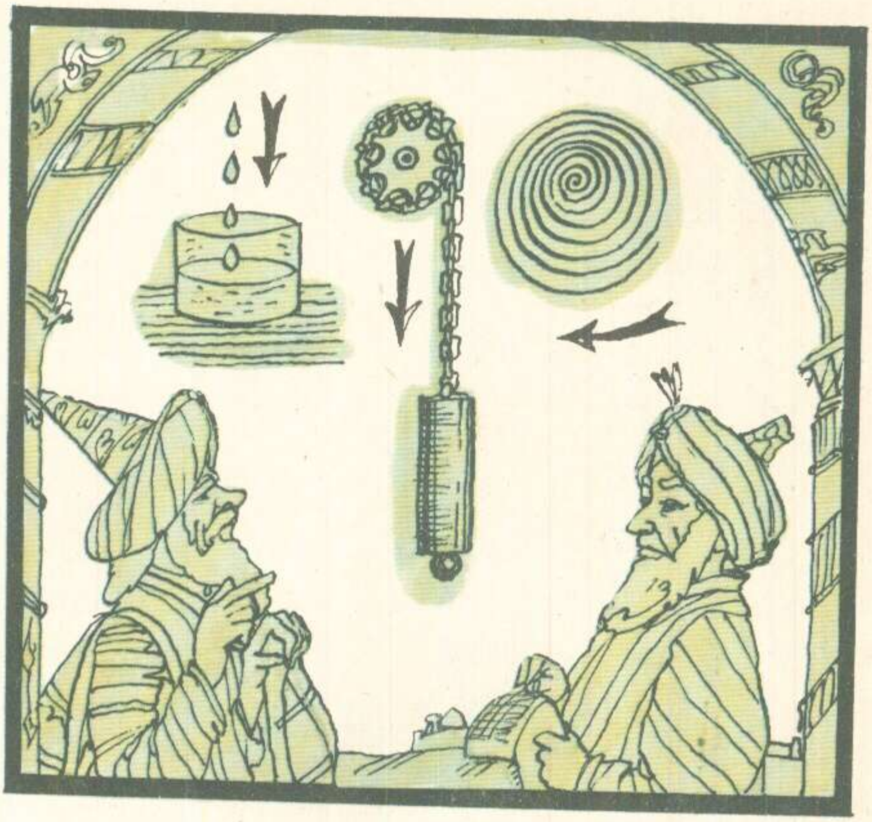


ऐसी भी घड़ियां थीं, जो तोप से गोला दागती थीं। ये भी सूरज से ही चलती थीं। "आतिशी शीशा" यानी दोनों ओर से उभरा शीशा, जो सूरज की किरणों को एक बिंदु में जमा कर देता है, इस तरह रखा जाता था कि सूरज की किरणें ऐन दोपहर को बारूद जला देती थीं।



जल घड़ी



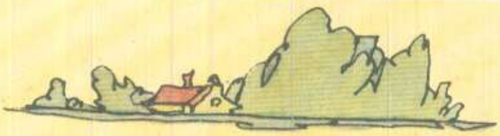


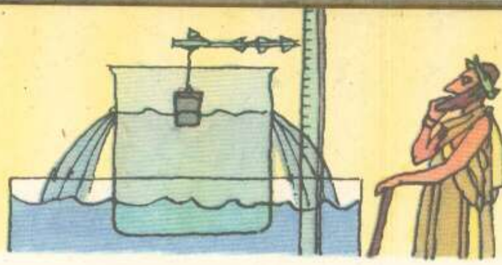
"ठां !" तोप चिल्लाती। "बारह बज गए! सुन लिया सबने ?" इस तरह बारह तोपों से पूरी घड़ी भी बनाई जा सकती थी।

बस एक ही खराब बात थी – रात को और बादल होने पर ये धूप घड़ियां काम नहीं करती थीं।

"समय निकलता जा रहा है," हम कहते हैं।

पर तुम्हें पता है कि कभी समय सचमुच ही निकला करता





था। **जल घड़ियों में।** एक बर्तन से दूसरे बर्तन में बूंद-बूंद करके पानी निकलता रहता था और पानी में तैरते तिरैंदे का तीर ऊपर या नीचे चलता रहता था। ऐसी घड़ी रात-दिन चलती थी – बस पानी डालना मत भूलो!

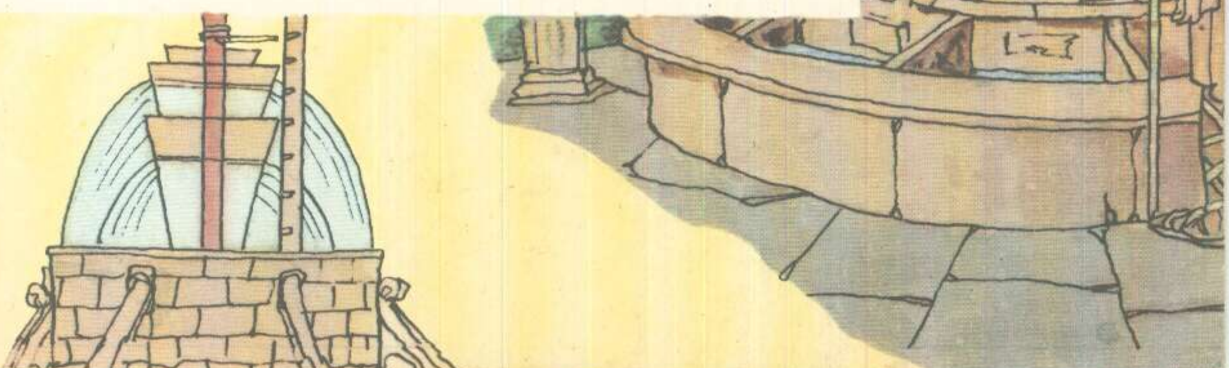
यह मत सोचना कि पनघड़ी सदा ही बिल्कुल सीधी-सादी थी – दो बर्तन और तिरैंदा। कभी-कभी तो पानी से बड़े-बड़े जटिल कल-पुर्जे चलाए जाते थे: खिड़की में से सूरमा निकलता, सूंस की पीठ पर तैरता लड़का आता, हर घंटे पर एक गोला खनकता हुआ प्याले में गिरता। और तो और अलार्म वाली पनघड़ी भी बना ली गई थी। पता है इसमें कैसा अलार्म था? घड़ी में एक हत्था सा होता था, जो नियत समय पर सोते आदमी की टांग पकड़ लेता था और उसे बिस्तर से नीचे खींचने की कोशिश करता था।

ये सारे अजीबोगरीब कल-पुर्जे गिरते पानी के बल से चलते थे। आखिर लोगों की समझ में यह बात भी आ गई कि क्यों न पानी के भार का काम बाट के भार से लिया जाए। बाट वाली पहली घड़ी लगभग एक हज़ार साल पहले बनी थी। इसमें केवल एक ही सुई होती थी – घंटे की सुई।

फिर भारी बाट का स्थान स्प्रिंग ने ले लिया। तुम पूछोगे स्प्रिंग भला घड़ी को कैसा चलाता है? तुम्हारे पास चाबी वाली कार है न? तुम उसमें चाबी भरते हो। इससे क्या होता है? लोहे का स्प्रिंग कसा जाता है। अभी वह फिर से ढीला पड़ेगा, पहिए चलाएगा। कार दौड़ने लगेगी। ऐसे ही घड़ी में भी होता है। स्प्रिंग ही सारे दांतेदार पहियों और सुइयों को चलाता है।

स्प्रिंग वाली घड़ी बिल्कुल छोटी सी भी बनाई जा सकती है, जेब में रखने के लिए। है न काम की चीज़! घड़ीसाज़ इससे भी आगे बढ़े – वे अमीरों के लिए बिल्कुल ही छोटी घड़ियां बनाने लगे। इतनी छोटी कि वे सोने की अंगूठियों में और रत्नों के बटनों









में जड़ी जा सकती थीं।

पर सोना और रत्न ही घड़ी के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। घड़ी के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह ठीक चले।

भारी बाट वाली जो पहली घड़ियां बनाई गई थीं, वे एक दिन में आधा घंटा तक आगे जा सकती थीं या पीछे चल सकती थीं। देखा, कितना "ठीक" समय दिखाती थीं ये घड़ियां!

जब घड़ियों में पेंडुलम लगने लगे, तभी वे सच्चे अर्थों में घड़ियां बनीं, सही समय दिखाने वाली घड़ियां।

पेंडुलम कहते हैं ऐसी धुरी को जिसके एक सिरे पर कोई भार बंधा हो। एक धागे के सिरे पर कंकड़ बांध दो – लो, सबसे सादा पेंडुलम बन गया। कंकड़ को धकेला और लो, पेंडुलम झूलने लगा। घड़ी में भी पेंडुलम झूलता रहता है – दाएं-बाएं, दाएं-बाएं। और हर बार एक समान समय में आगे-पीछे झूलता है। जैसे रात और दिन, ज्वार और भाटे की आवृत्ति होती है, वैसे ही पेंडुलम की एक सी गतियां बारम्बार होती हैं। हां, ये गतियां बहुत जल्दी-जल्दी होती हैं। दाएं-बाएं, दाएं-बाएं पेंडूलम झूलता जाता है।

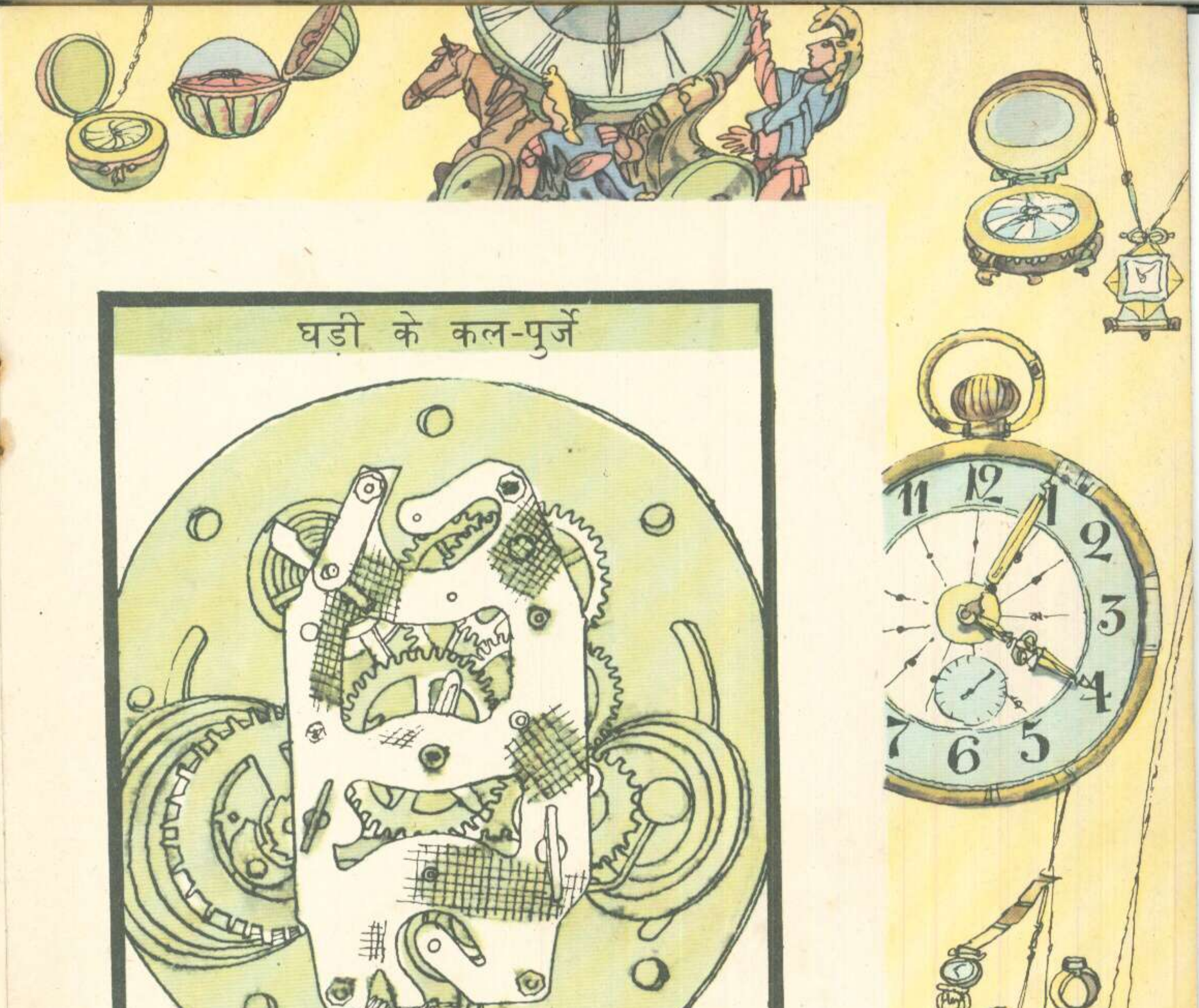
पर घड़ी "टिक-टिक, टिक-टिक" क्यों करती है? घड़ी में एक खास पहिया होता है, जिस पर मुड़े हुए दांते बने होते हैं। ये दांते ही पेंडुलम को धकेलते हैं, उस पर चोट करते हैं। दांते पेंडुलम पर चोट करते हैं, उसे धकेलते हैं और हमें इस चोट की आवाज़ सुनाई देती है: "टिक-टिक"। बाट या स्प्रिंग, पेंडुलम और दांतेदार पहिए सब मिलकर सही-सही काम करते हैं।

पेंडुलम पर ही सबसे अधिक यह निर्भर होता है कि घड़ी कितना सही समय दिखाती है।

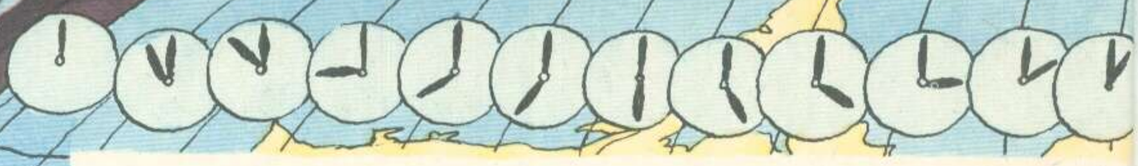
और अब सबसे सही घड़ी कौन सी है?

एक बड़े, खाली कमरे में बल्बों से लिखा है: "सोवियत संघ का मानक समय"। छोटे-छोटे पीले बल्बों से समय के अंक बने





घड़ी के कल-पुर्जे

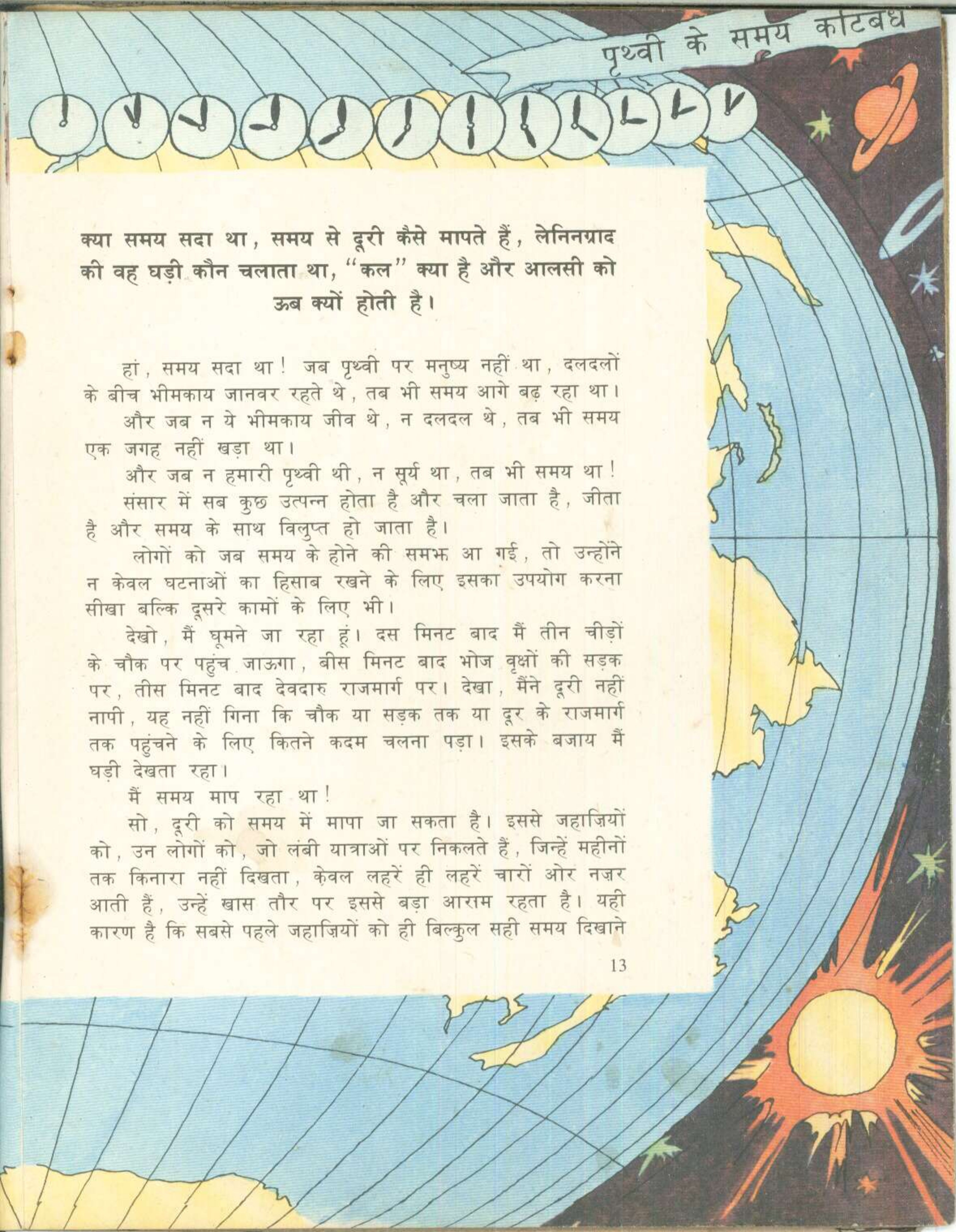


हैं: एक बजकर तीन मिनट पांच सेकंड। घड़ी से सोवियत देश की सभी घड़ियां मिलाई जाती हैं। यह घड़ी सबसे अधिक सही समय दिखाती है। यह घड़ी तीस हज़ार साल में एक सेकंड आगे या पीछे हो सकती है! दूसरे देशों में भी ऐसी सबसे सही घड़ियां हैं। सभी देश रेडियो पर एक दूसरे से समय मिलाते हैं। सारे संसार में विश्व समय सेवा व्याप्त है।

समय आज भी हमें कहता है: "हम सब एक ही ग्रह पर रहते हैं!"

सूरज निकलता है – नया दिन शुरू होता है। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और नए-नए नगरों, गांवों को सूरज की ओर करती जाती है। अलग-अलग नगरों में अलग-अलग समय होता है। व्लादीवोस्तोक में दोपहर हो गई, पर मास्को में अभी दिन शुरू ही हो रहा है। समय का हिसाब रखने में आसानी हो, इसके लिए सारी पृथ्वी को चौबीस समय कटिबंधों में बांटा गया है। देखो चित्रकार ने ये कटिबंध बनाए हैं। दिन में चौबीस घंटे होते हैं और चौबीस ही कटिबंध हैं। जब मास्को में सुबह के सात बजते हैं, तब व्लादीवोस्तोक में दिन के दो बजे होते हैं, दिल्ली में साढ़े नौ बजे होते हैं और पेरिस व लंदन में सुबह के पांच। एक समय कटिबंध से दूसरे कटिबंध में जाते ही अपनी घड़ी एक घंटा आगे या पीछे करनी पड़ती है।





क्या समय सदा था, समय से दूरी कैसे मापते हैं, लेनिनग्राद की वह घड़ी कौन चलाता था, "कल" क्या है और आलसी को ऊब क्यों होती है।

हां, समय सदा था! जब पृथ्वी पर मनुष्य नहीं था, दलदलों के बीच भीमकाय जानवर रहते थे, तब भी समय आगे बढ़ रहा था।

और जब न ये भीमकाय जीव थे, न दलदल थे, तब भी समय एक जगह नहीं खड़ा था।

और जब न हमारी पृथ्वी थी, न सूर्य था, तब भी समय था!

संसार में सब कुछ उत्पन्न होता है और चला जाता है, जीता है और समय के साथ विलुप्त हो जाता है।

लोगों को जब समय के होने की समझ आ गई, तो उन्होंने न केवल घटनाओं का हिसाब रखने के लिए इसका उपयोग करना सीखा बल्कि दूसरे कामों के लिए भी।

देखो, मैं घूमने जा रहा हूं। दस मिनट बाद मैं तीन चीड़ों के चौक पर पहुंच जाऊंगा, बीस मिनट बाद भोज वृक्षों की सड़क पर, तीस मिनट बाद देवदारु राजमार्ग पर। देखा, मैंने दूरी नहीं नापी, यह नहीं गिना कि चौक या सड़क तक या दूर के राजमार्ग तक पहुंचने के लिए कितने कदम चलना पड़ा। इसके बजाय मैं घड़ी देखता रहा।

मैं समय माप रहा था!

सो, दूरी को समय में मापा जा सकता है। इससे जहाज़ियों को, उन लोगों को, जो लंबी यात्राओं पर निकलते हैं, जिन्हें महीनों तक किनारा नहीं दिखता, केवल लहरें ही लहरें चारों ओर नज़र आती हैं, उन्हें खास तौर पर इससे बड़ा आराम रहता है। यही कारण है कि सबसे पहले जहाज़ियों को ही बिल्कुल सही समय दिखाने





वाली घड़ी की ज़रूरत पड़ी।

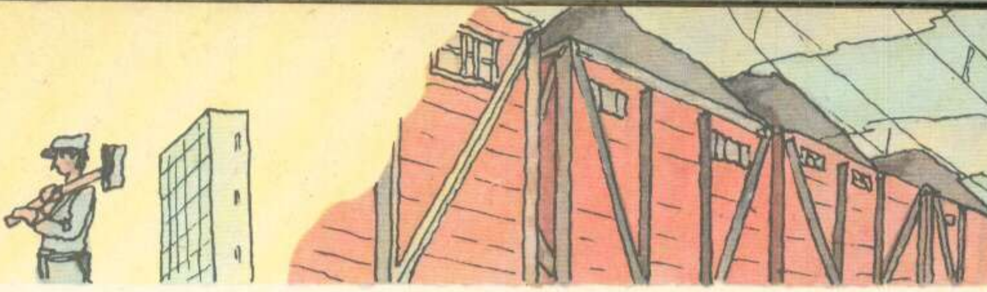
हिमभंजक जहाज़ ध्रुवीय महासागरों का हिमकवच तोड़ते हुए ध्रुवीय स्टेशनों को जाते हैं, समुद्री जहाज़ दूर-दराज़ के देशों को जाते हैं, पानी के नीचे पनडुब्बी चलती है। और सबके कप्तानों के पास सही समय दिखाने वाली घड़ी है – यह बिल्कुल ज़रूरी है।

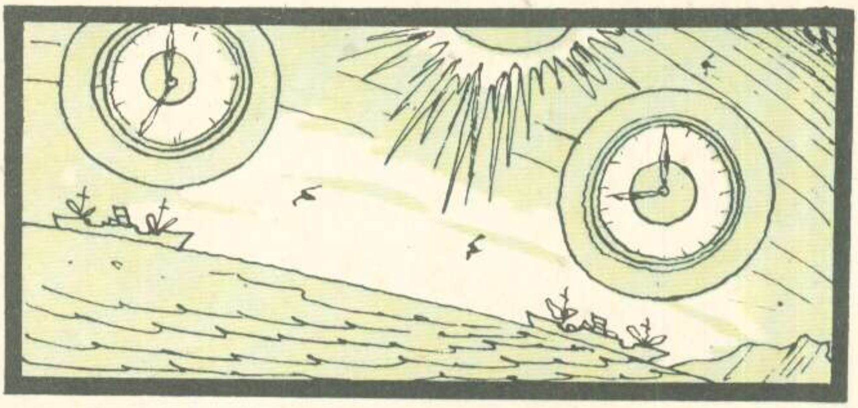
आदमी जहां भी जाए, घड़ी सदा उसके साथ रहती है। आदमी घड़ी के बिना, समय का हिसाब रखे बिना जी ही नहीं सकता। और ऐसा भी होता है कि घड़ी को लगातार चलाए रखना, रुकने न देना भी एक पराक्रम बन जाता है।

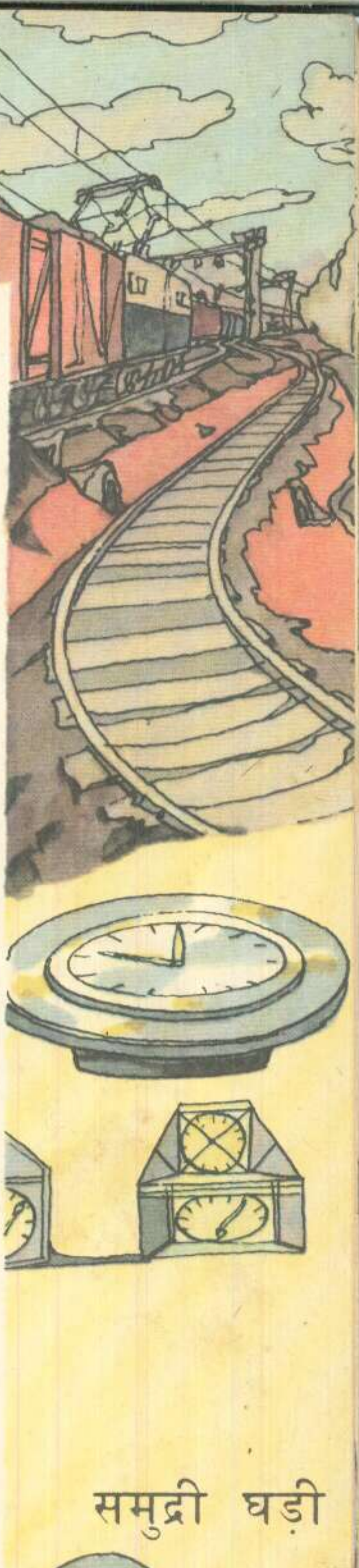
द्वितीय विश्व-युद्ध में फ़ासिस्टों ने लेनिनग्राद को घेर लिया। तेज़ पाला पड़ रहा था। नगर की घड़ियों की सुइयां रुक गईं। नगर के स्टेशन की घड़ी खड़ी थी। मास्को को गाड़ियां नहीं जाती थीं। उन दिनों लेनिनग्राद से कहीं भी कोई रेलगाड़ी नहीं जाती थी।

लेकिन लेनिनग्राद में एक ऐसी घड़ी भी थी, जो नौ सौ दिन के घेरे में एक दिन को, एक पल को भी नहीं रुकी। यह मेन्देलेयेव मीनार की घड़ी थी। इसके बारे में तरह-तरह के किस्से प्रचलित





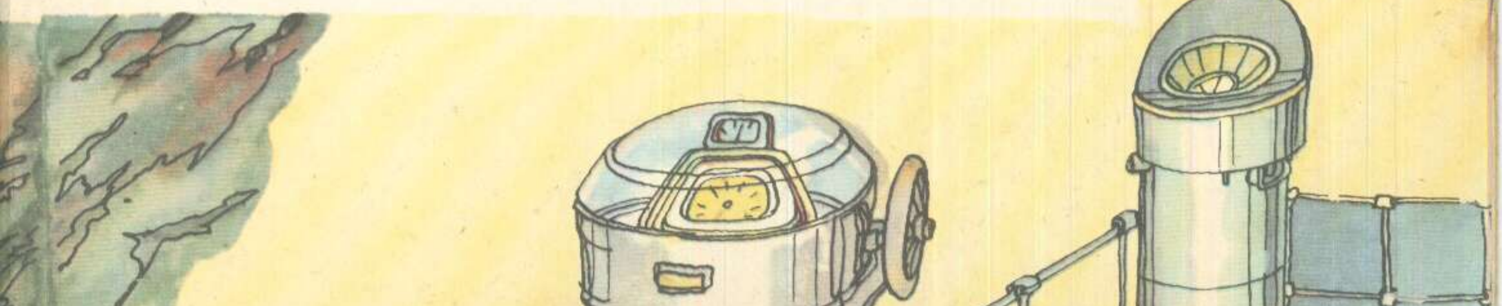


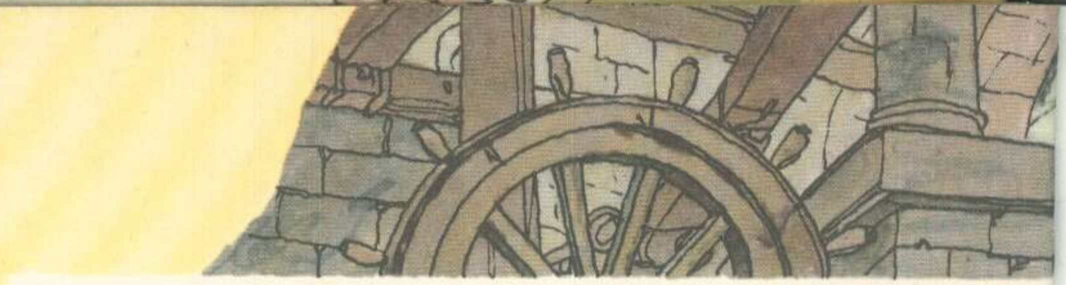


हो गए थे। लोग कहते थे कि घड़ी से एक बिजली का तार ज़मीन के नीचे-नीचे मास्को तक गया है। फ़ासिस्ट यह तार ढूंढ रहे हैं, उसे काट देना चाहते हैं, पर तार है कि मिलता ही नहीं।

असल में यह एक बहुत पुरानी घड़ी थी, जिसमें बहुत ही भारी बाट लगा हुआ था। यह बाट कई मन का था और उसे एक खास चक्के से ऊपर उठाना होता था। बूढ़ा मज़दूर इवान फ़ेदोतोव यह काम करता था।

बूढ़ा मज़दूर दिन पर दिन दुर्बल हो रहा था। हिम के ढेर पार करके मीनार तक जाना उसके लिए मुश्किल था। ऊंची-ऊंची सीढ़ियां चढ़कर चक्के तक जाना और भी मुश्किल था। और कई कई मन भारी बाट को ऊपर उठाने के लिए चक्का चलाना तो असम्भव ही लगता था। लेकिन बूढ़ा मज़दूर फ़ेदोतोव रोज़ाना बिना नागा हिम्मत करके घंटाघर जाता था, कई मन भारी वजन उठाता था। मीनार पर लगी घड़ी चलती थी और लेनिनग्राद के निवासियों के मन में आशा की किरण जगाती थी: "घड़ी चल रही है। समय बीत रहा है। आखिर विजय का भी दिन आएगा।"

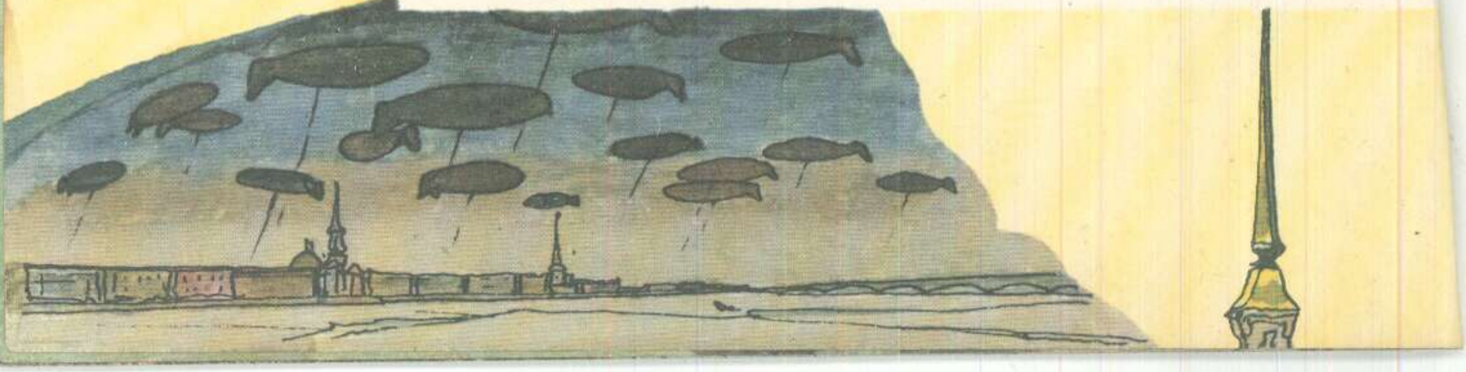




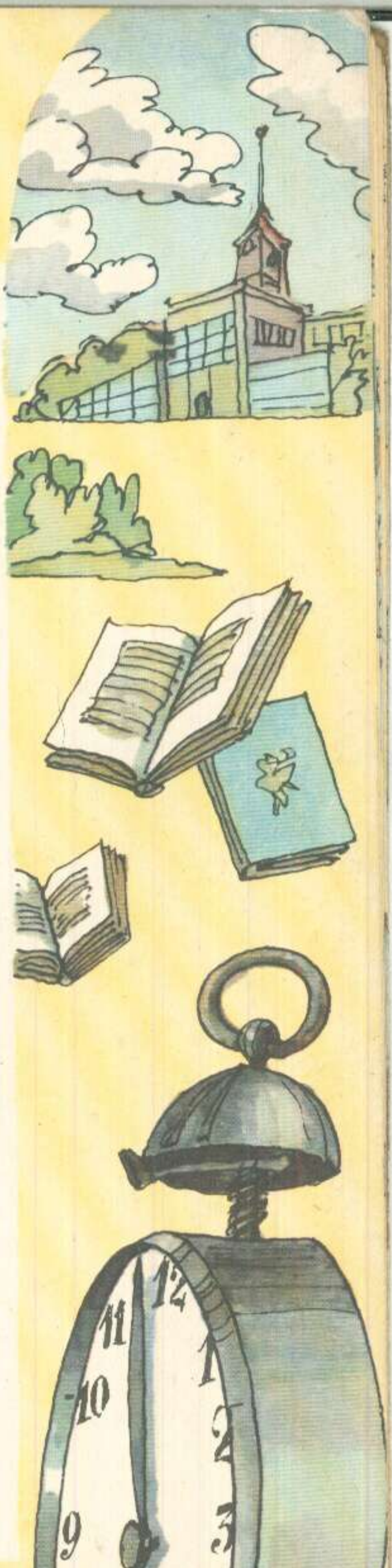




मैं, तुम, हम सब जब कुछ बताते हैं, सुनाते हैं, तो बार-बार कहते हैं: "कल की बात है... आज सुबह मैंने देखा... कल मैं यह करूंगा..." अपने जीवन की घटनाओं के बारे में बताते हुए हम सदा समय की चर्चा करते हैं: "बहुत पहले की बात है... थोड़े दिन पहले... अभी-अभी... कुछ दिन बाद..." हम सदा समय की बात सोचते हैं। सारा जीवन हम समय से मापते हैं।







और आदमी रोचक घटनाओं से समय को याद रखता है – कब वह किसी अनुभवी आदमी से मिला था, कब किसी नए शहर गया था, कब उसने कोई अच्छी पुस्तक पढ़ी थी।

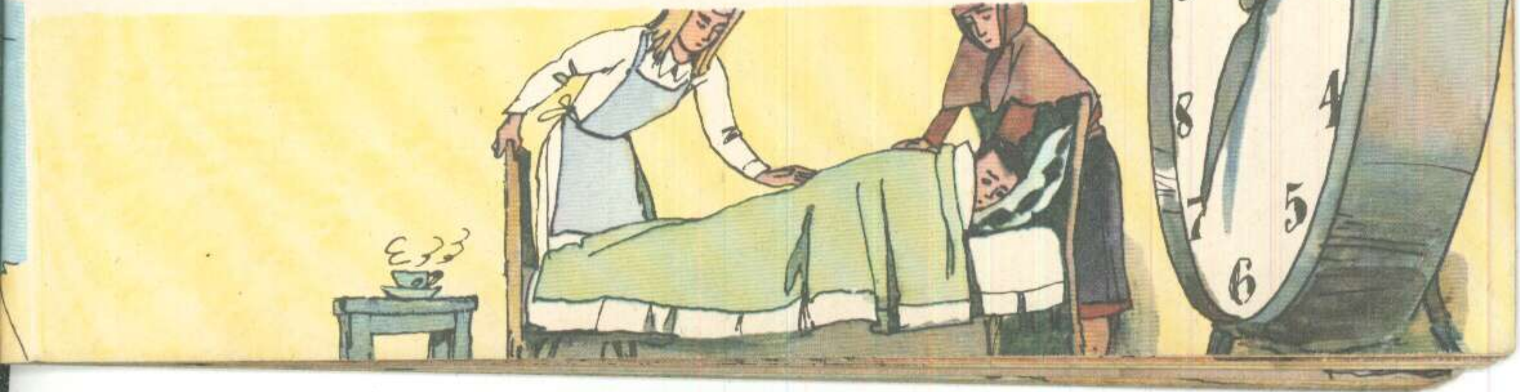
जितना अधिक आदमी ने देखा, जाना, सुना – उतना ही अधिक वह जिया। यानी उसका जीवन लंबा रहा। और निठल्लू आलसी आदमी तो जीता नहीं, बस यों ही समय गंवाता है। इसी-लिए तो कहते हैं कि करने को कुछ न हो तभी जी भी ऊबता है।

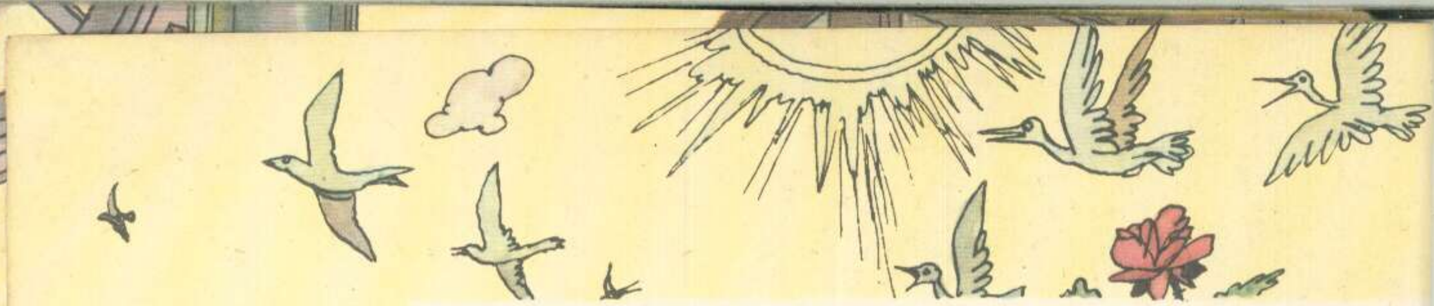
आलसी के लिए समय खड़ा ही रहता है।

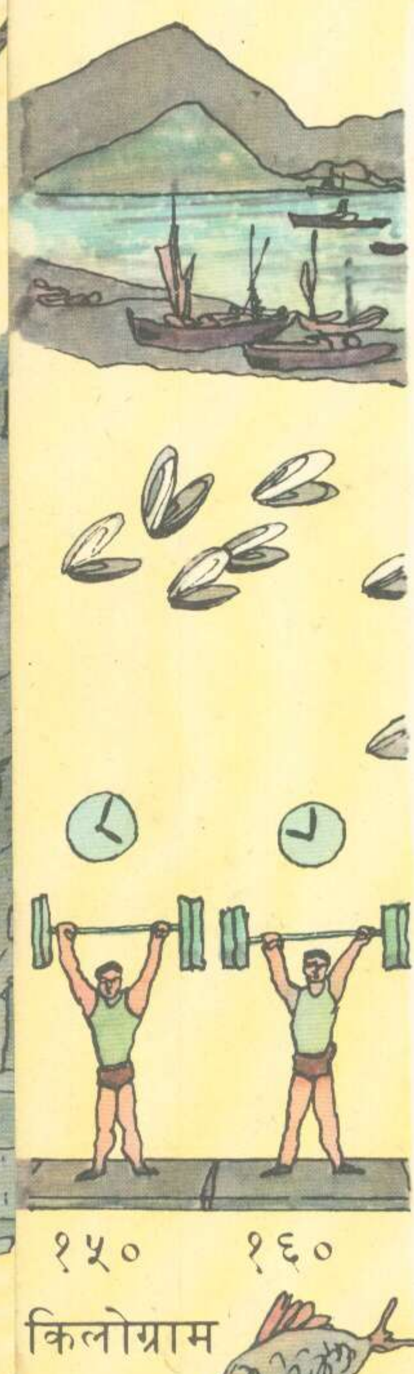
कौन सी घड़ी शरीर में है, कैसे सीपियां और मटर समय याद रखते हैं और "रात के पंछी" तथा "भोर के पंछी" कौन हैं।

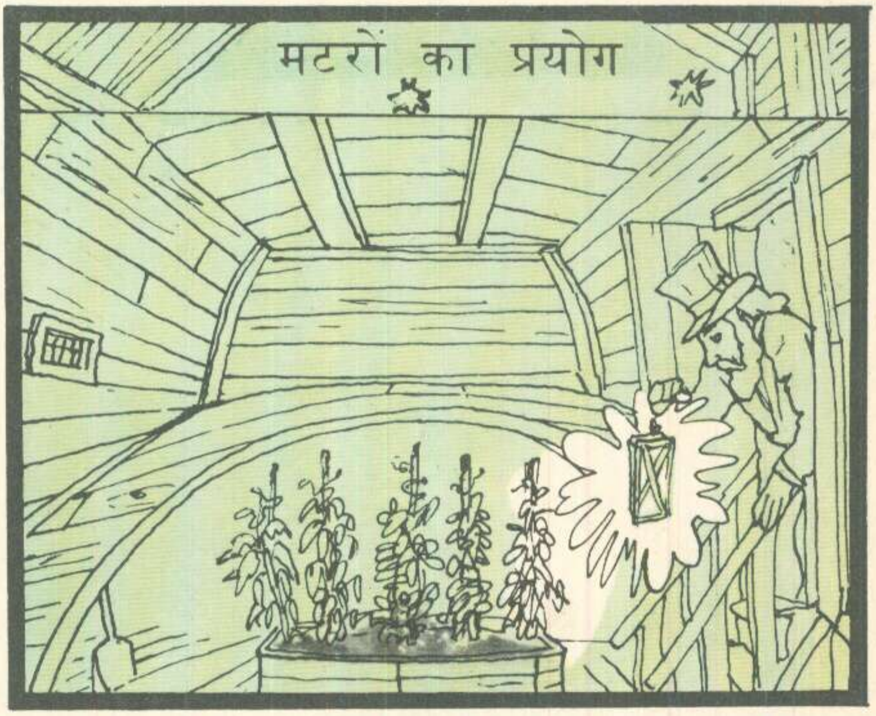
अब मैं तुम्हें एक आश्चर्यजनक घड़ी के बारे में बताता हूं। इस घड़ी में न सुइयां होती हैं, न स्प्रिंग और न बाट। और सबसे अधिक अश्चर्य की बात तो यह है कि इसे किसी ने देखा ही नहीं है। लेकिन संसार में सभी जीवों के पास यह घड़ी है। चिड़ियां, मछलियां, फूल, बिल्लियां, पेड़ और हम इन्सान – सभी के पास ऐसी घड़ी है।

दो सौ से भी अधिक साल पहले की बात है। फ़्रांस के खगोल-विज्ञानी दे मेरां ने एक दिन चांद और ग्रहों को देखना छोड़ दिया, तारे गिनने के बजाय वह मटरों पर कुछ काम करने लगे। मटरों के कुछ पौधे लेकर उन्होंने अंधेरे तहखाने में लगा दिए। वहां पौधों को न सूरज दिखता था, न चांद। तहखाने के अंधेरे में यह पता नहीं चल सकता था कि कब दिन होता है और कब रात। लेकिन मटर के पौधे पहले की ही भांति जीते जा रहे थे: दिन के समय उनकी पत्तियां खुल जातीं, ऊपर को उठतीं, और रात को नीचे





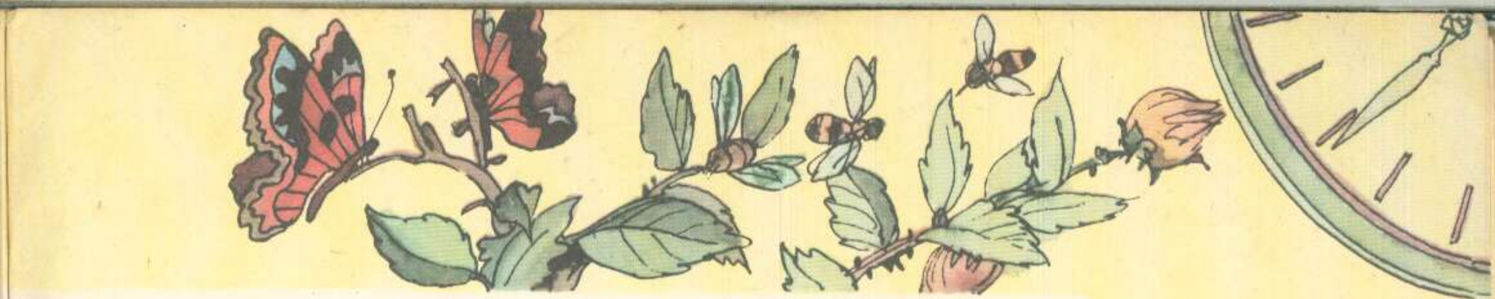




झुक जातीं, मानो सो रही हों। इसका मतलब था कि मटर के पौधों को समय का पता चलता रहता है। इस तरह लोगों ने पहले पहल यह जाना कि पौधों में अपनी आंतरिक घड़ी होती है।

और देखो, अभी थोड़े समय पहले क्या हुआ... एक समुद्र के किनारे पर सीपियां पकड़कर लोग उन्हें हवाई जहाज़ पर हज़ारों किलोमीटर दूर एक झील पर ले गए। समुद्र के तट पर जब धूप खिली होती, तो झील पर चंद्रमा उग रहा होता। लेकिन सीपियां अपनी ही घड़ी के समय के अनुसार जी रही थीं। वे अपने कपाट तभी खोलती थीं, जब उनके समुद्र तट पर ज्वार आ रहा होता।





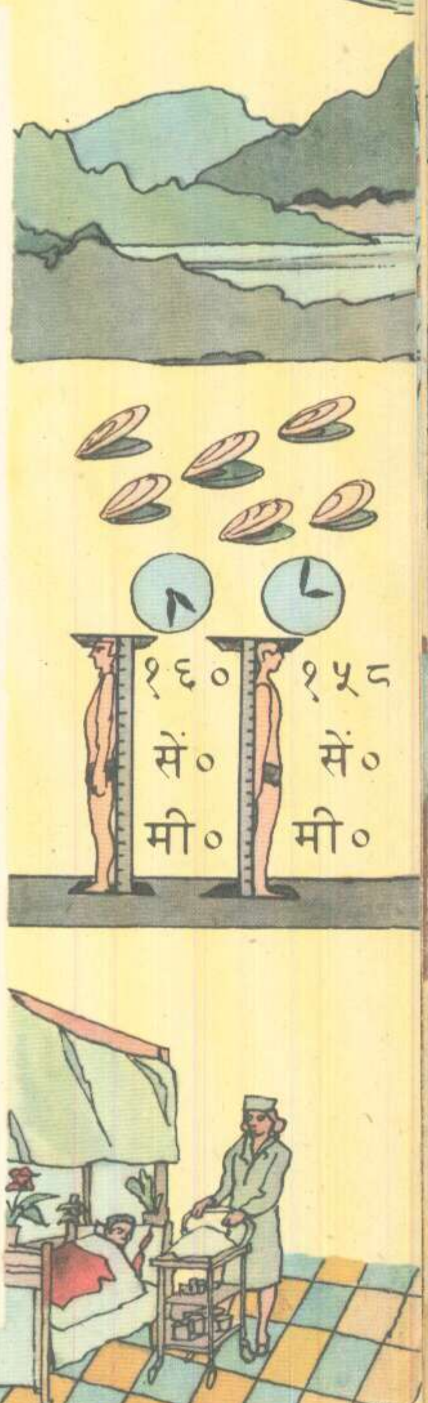
सीपियां अपनी **जैव घड़ी** के अनुसार जी रही थीं। वैज्ञानिकों ने इस घड़ी का यही नाम रखा है। "जैव" शब्द जीवन से बना है, यानी यह जीवन की घड़ी है।

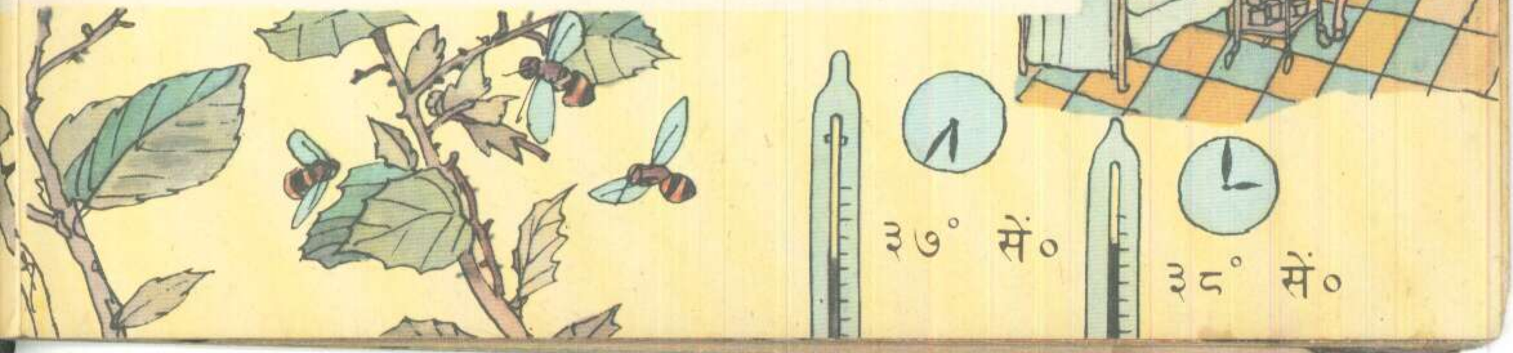
और यह अकारण ही नहीं कि खगोलविज्ञानी ने ही सबसे पहले वनस्पतियों में यह घड़ी देखी। उसके दिमाग में ही सबसे पहले यह परखने का विचार आया कि सूर्योदय और सूर्यास्त का, पूर्णिमा और अमावस का, रात और दिन का मछलियों, केकड़ों, कीड़ों, केंचुओं, बछड़ों, गायों और लोगों के भी जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है।

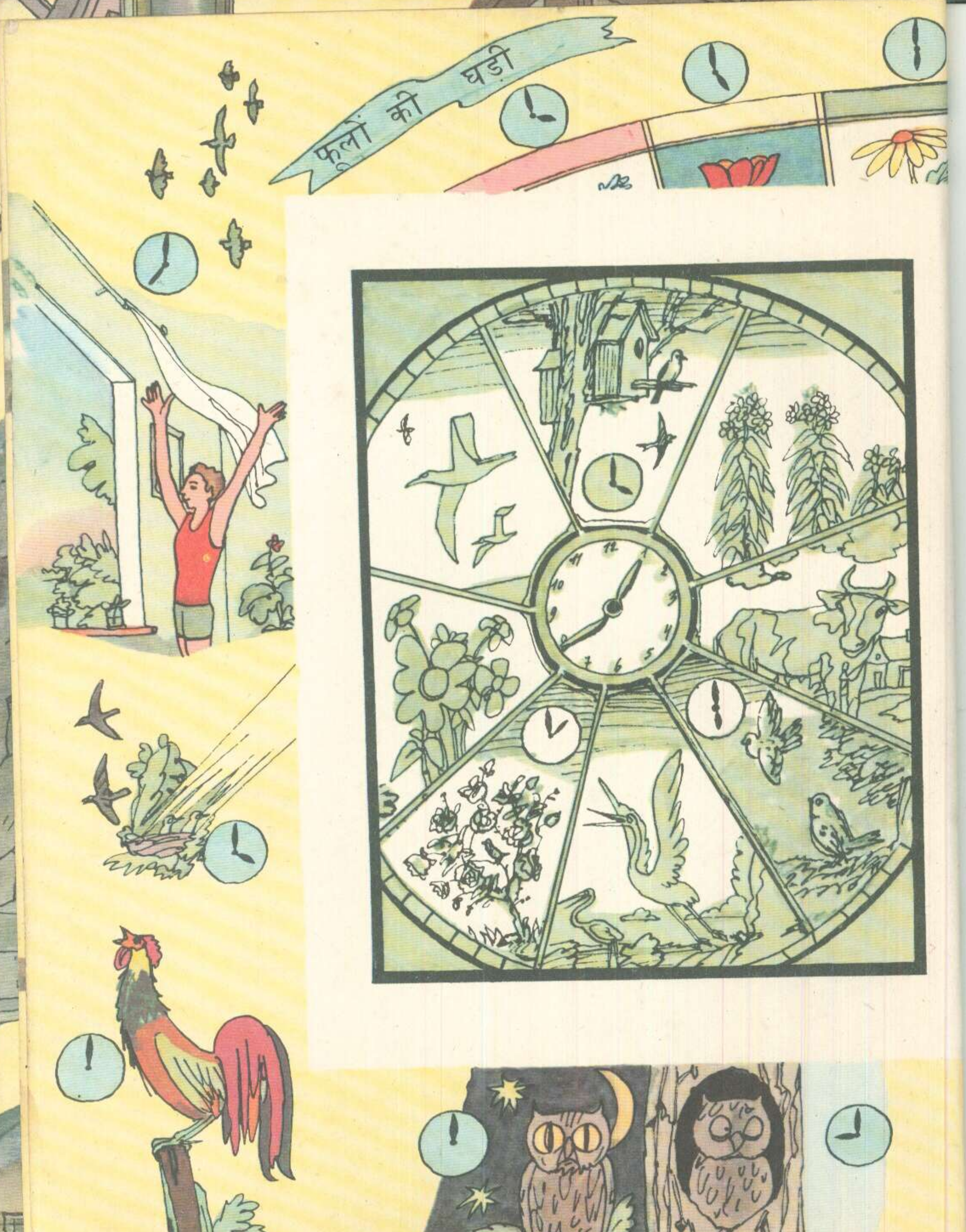
रोगी सुबह बड़बड़ाते हैं: "इतनी तड़के जगा दिया बुखार देखने के लिए, क्या बाद में नहीं देख सकते?" नहीं, बाद में नहीं देख सकते। रोगियों को बेकार में ही नहीं उठाया जाता। सुबह छह बजे आदमी के शरीर का तापमान सबसे कम होता है, और शाम के छह बजे सबसे अधिक। कुछ दवाइयां रात को खानी चाहिए और कुछ सुबह तड़के। ऐसे समय पर ही दवाई रोगी को सबसे अधिक फ़ायदा पहुंचाती है।

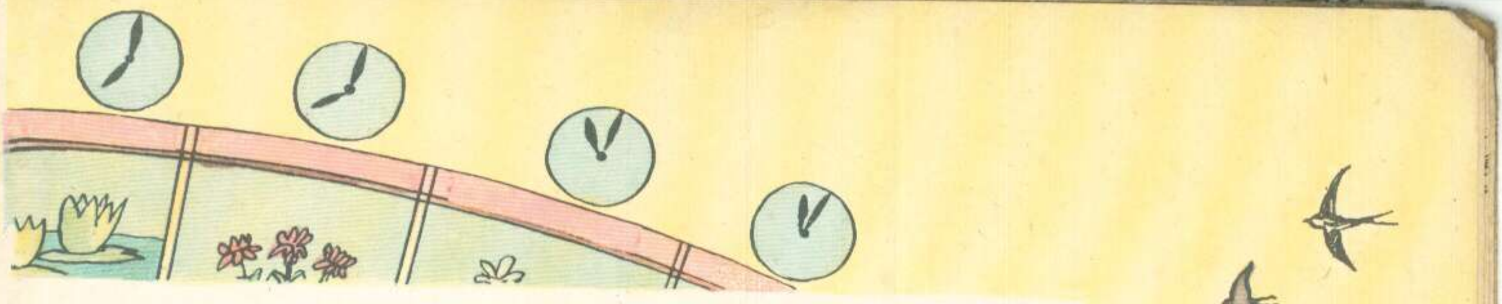
ज़्यादातर लोग सुबह शरीर में स्फूर्ति अनुभव करते हैं। सुबह वह खुशी-खुशी काम करते हैं और उन्हें काम करने में मज़ा आता है। सुबह काम करना उनके लिए आसान होता है। ऐसे लोगों को "भोर का पंछी" कहा जाता है। तुम तो जानते ही हो कि कुछ पंछी पौ फटते ही आसमान में ऊंची उड़ान भरते हैं। और मेरा एक दोस्त लेखक है, जो बस रात को ही लिखता है। उसे ज़रा भी नींद नहीं आती, और लिखने में भी आसानी होती है। ऐसे लोगों को "रात का पंछी" कहा जाता है। तुम्हें पता है, कुछ पंछी रात को ही शिकार पर निकलते हैं, दिन भर वे सोते रहते हैं।

हथेलियों की गर्माहट, दिल की धड़कन, मांसपेशियों का बल, काम की खुशी – यह सब घंटे-घंटे बदलता रहता है। और यह जीवन






फूलों की घड़ी



की घड़ी के चलने की ही निशानी है।

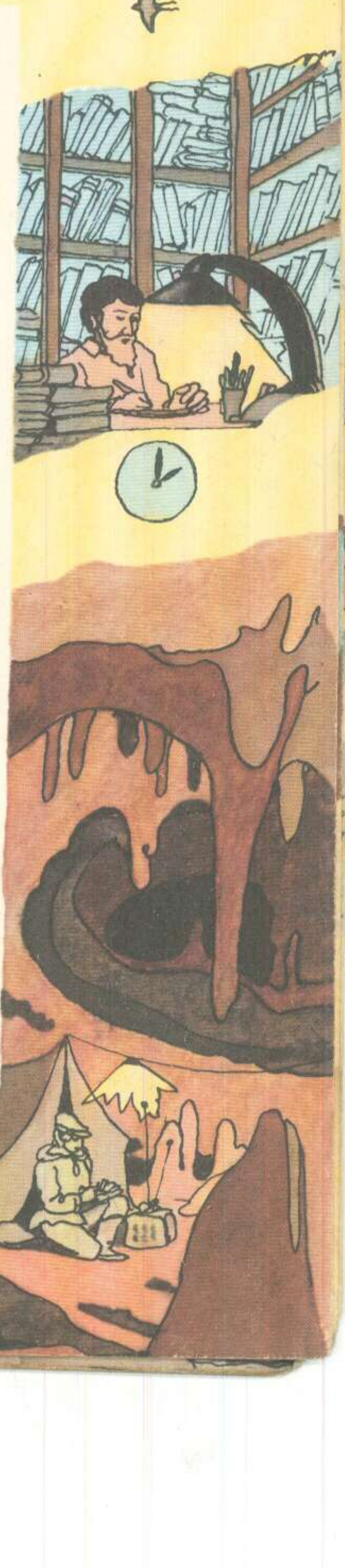
अपनी जैव-घड़ी का अध्ययन करते हुए कई साहसी लोग ज़मीन में बहुत गहरी, अंधेरी गुफ़ाओं में जाकर रहते हैं। ऐसी एकदम नई जगह पर, ऐसी कठिन परिस्थितियों में हमारी आंतरिक घड़ी कैसे चलेगी? वैज्ञानिक कई हफ़्तों और महीनों तक गुफ़ाओं में रहते हैं, वे घड़ी नहीं देखते, सूरज उन्हें दिखाई नहीं देता। बड़ा मुश्किल काम है यह – अंधेरे में और एकांत में रहना। पर रोचक भी है! एक वैज्ञानिक ने चालीस दिन, चालीस रातें गुफ़ा में काटीं। पर उसे लगा कि पच्चीस दिन ही बीते हैं। "जैव घड़ी" गड़बड़ा गई। पर फिर भी ज़मीन के नीचे, अंधेरे में और सन्नाटे में वह आदमी को बताती रही थी: "समय बीत रहा है!"

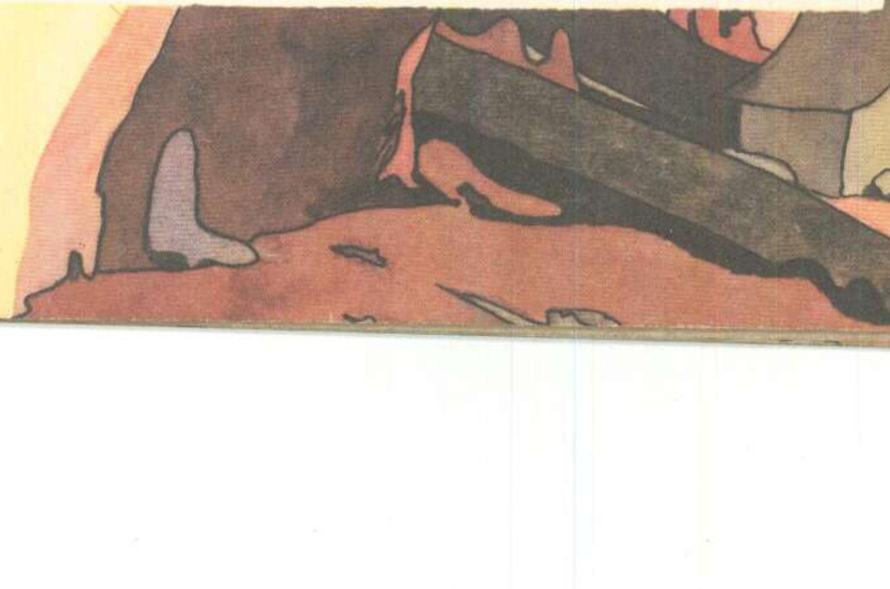
यह जैव घड़ी कैसे बनी हुई है? इसमें कैसे "स्प्रिंग" और "पेंडुलम" हैं? ये बातें कोई नहीं जानता। जैव घड़ी का रहस्य अभी नहीं खुला है।

हां, इतना पक्का पता है कि ऐसी घड़ी है ज़रूर!

ऐसे लोग भी होते हैं, जो शाम को अपने आप से कह सकते हैं: "मुझे सुबह सात बजे जागना है। एक मिनट भी देर से नहीं!" और सचमुच ठीक उतने ही बजे जाग जाते हैं। पर मैं एक लड़के को जानता हूं, दो-दो घड़ियों में अलार्म लगाकर सोता है, फिर भी स्कूल देर से पहुंचता है। अब ये बातें पढ़कर वह खुश हो जाएगा: "सारा कुसूर जैव घड़ी का है। मैं थोड़े ही देर से जागता हूं, जैव घड़ी ही ठीक से काम नहीं करती!" लेकिन मैं सोचता हूं कि हर कोई सुबह उठने की आदत डाल सकता है।









एक मिनट का क्या मूल्य है, कारखानों के लिए समय क्या है और कैसे समय मिलकर अच्छी तरह काम करने में मदद करता है।



अब हम घड़ी की नहीं, कार की बात करेंगे। यह देखो कितनी सुंदर कार खड़ी है – आगे बड़ी-बड़ी बत्तियां हैं, पीछे छोटी-छोटी लाल बत्तियां टिमटिमाती हैं, कितने मोटे टायर हैं, शीशे धूप में चमचम करते हैं। अब इंजन स्टार्ट हुआ और कार हवा से बातें करती चल दी...

पर, आओ हम कुछ सोच-विचार करें।

कारें रंग-बिरंगी हैं – नीली, पीली, लाल, काली। इसका मतलब है पेंट फ़ैक्टरियों में मज़दूरों ने तरह-तरह के रंगों के पेंट बनाए हैं।

कार की बत्तियां जल रही हैं, शीशे चमचमाते हैं। इसका मतलब है कांच फ़ैक्टरियों में शीशे बनाए गए। और बल्ब फैक्टरी में कार के लिए बल्ब बनाए गए।

टायर बनाने के लिए टायर मिल के मज़दूरों ने मेहनत की।

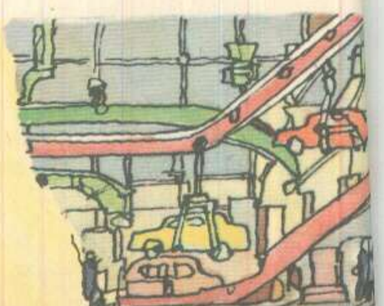
कार की सीटों पर रोयेंदार कपड़ा लगा हुआ है – यह कपड़ा मिल में बनाया गया है।

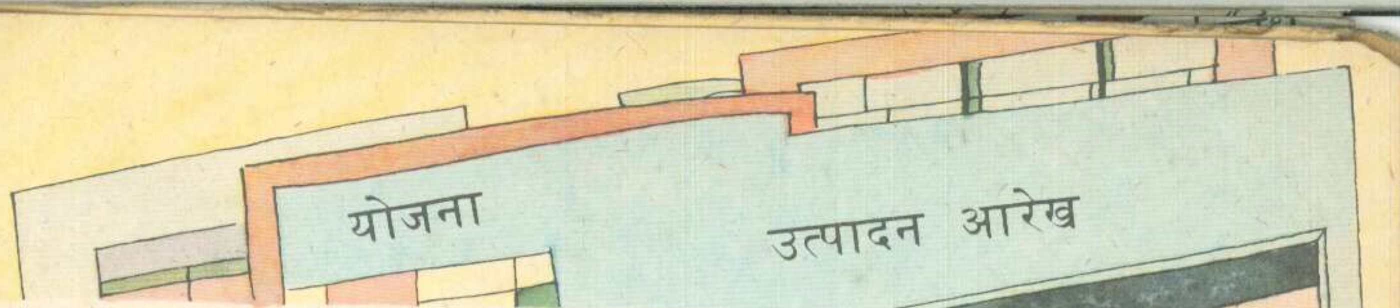
कार के अंदर संगीत गूंज रहा है – यह रेडियो कारखाने का काम है। वहां कार के लिए रेडियो बनाया गया।

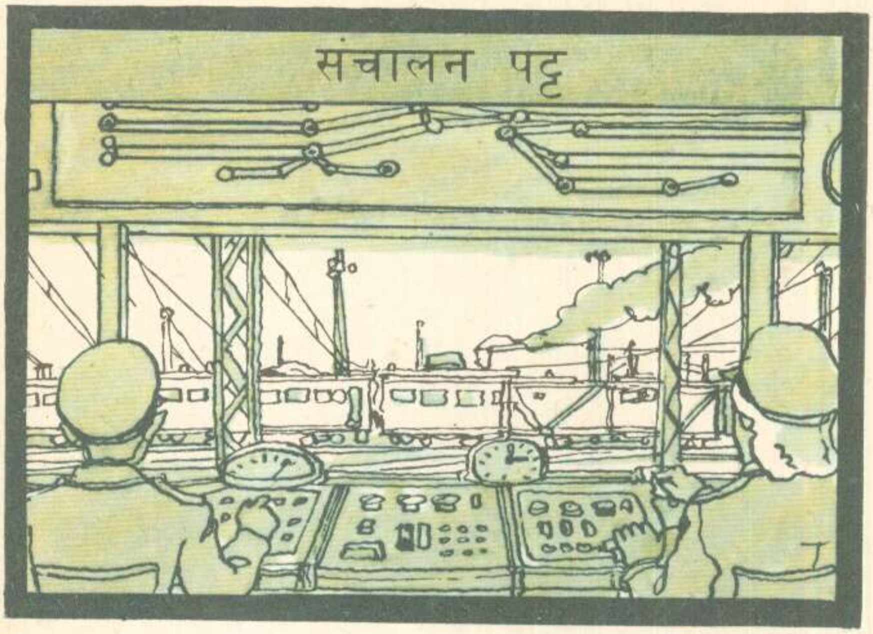
इंजन मोटरकार इंजनों के कारखाने में बनाया गया।

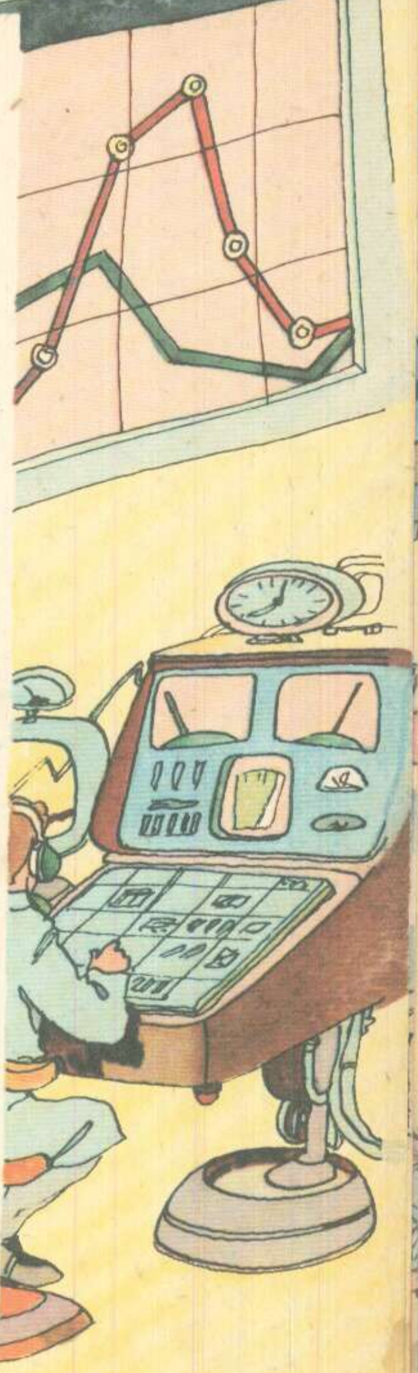
एक दिन मैं यह गिनने लगा कि एक कार बनाने के लिए कितने कारखानों, मिलों, फ़ैक्टरियों को काम करना पड़ा, पर गिन नहीं पाया। बहुत सारों को काम करना पड़ता है। पर हम कहते हैं कि यह कार उस फ़ैक्टरी में बनी है। हां, यह सच है।









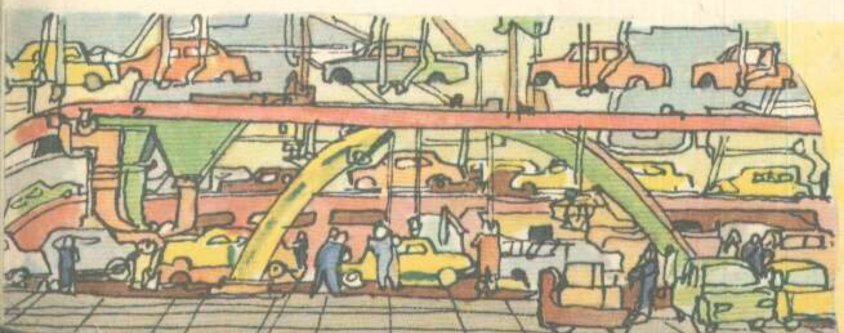


कोई बड़ी कार फ़ैक्टरी प्रति मिनट एक कार तैयार करती है। एक मिनट बीता और एक कार तैयार। अब यह देखो कि इस किताब का एक पन्ना पढ़ने में तुम्हें, या किसी बड़े को भी एक मिनट से अधिक लगेगा। तो देखा, कार फ़ैक्टरी में एक मिनट का कितना मूल्य है! तुम खुद ही सोचो:

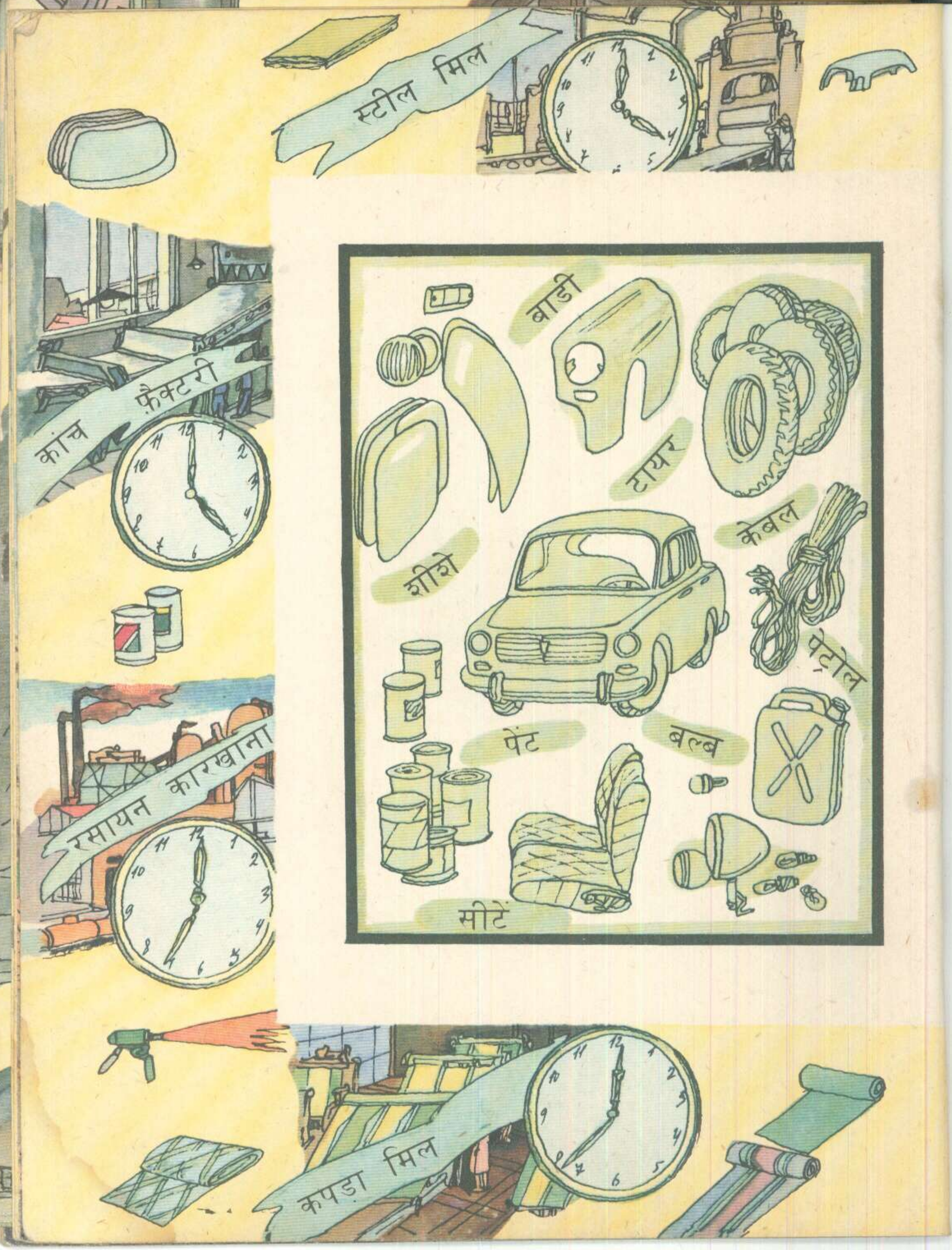
एक मिनट बीता और कार तैयार!..

एक मिनट बीता और कार तैयार!..

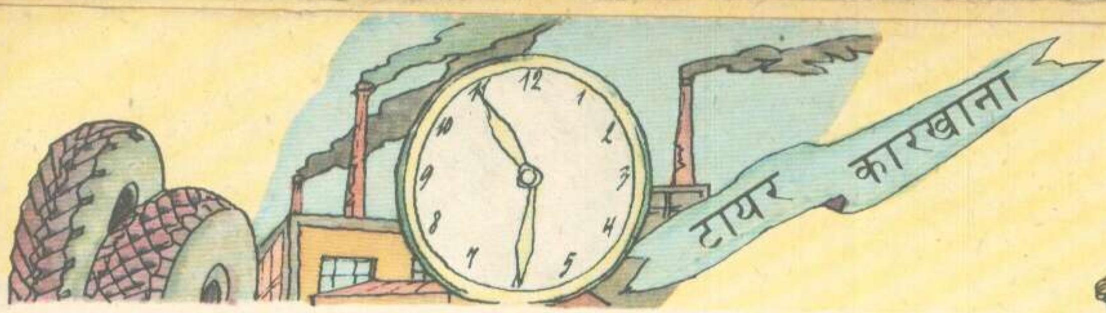
और कैसे सभी दूसरी फ़ैक्टरियों, मिलों, कारखानों में जहां कपड़ा, शीशा, टायर और दूसरी चीज़ें बनती हैं, समय की कद्र की जानी चाहिए। आखिर वे सब कार फ़ैक्टरी से इन्हीं मिनटों



कार फ़ैक्टरी



स्टील मिल
कांच फ़ैक्टरी
रसायन कारखाना
कपड़ा मिल
बाडी
टायर
शीशे
केबल
पेट्रोल
पेंट
बलब
सीटें



द्वारा जुड़े हुए हैं। समय श्रमिकों को एक सूत्र में बांधता है!

एक मिनट बीता और एक कार तैयार!..

एक मिनट बीता और एक कार तैयार!..

कहीं किसी ने थोड़ी सी भी ढील की, एक भी फ़ैक्टरी या कारखाने ने ढंग से काम नहीं किया, तो पता है क्या होगा? कार बनाने की बड़ी फ़ैक्टरी भी रुक जाएगी।

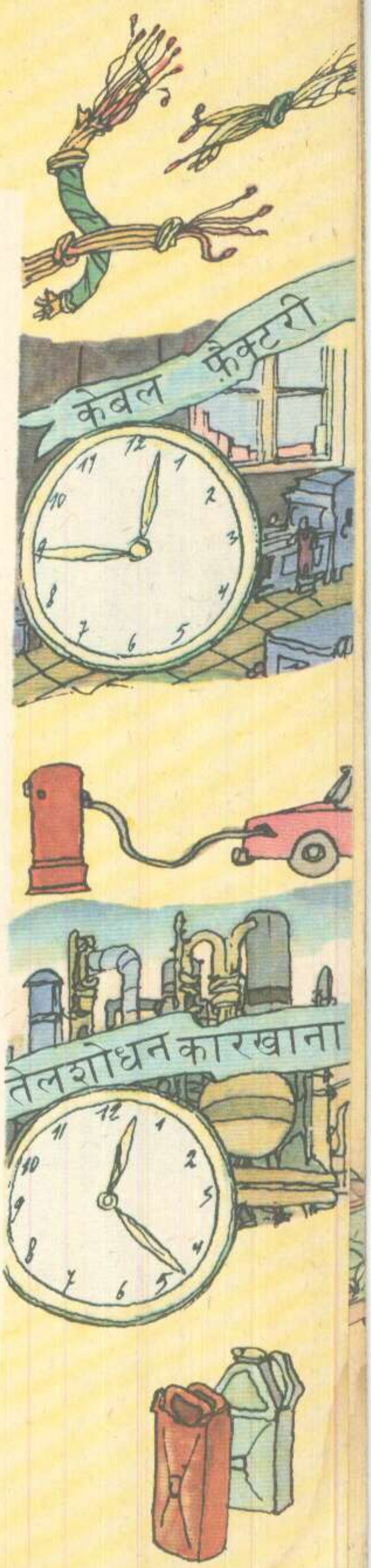
इसीलिए सभी फ़ैक्टरियों, कारखानों, मिलों के काम की एक निश्चित **योजना** होती है।

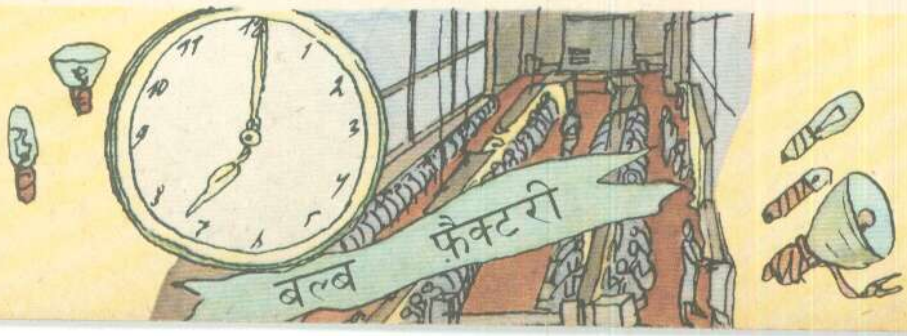
कौन सी फ़ैक्टरी, मिल, कारखाने को क्या-क्या करना है यह सब योजना में लिखा होता है।

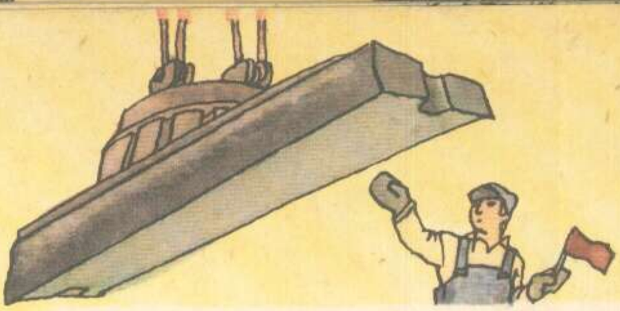
कितनी मशीनें और पुर्जे बनाने हैं, कितना कपड़ा बुनना है यह भी योजना में बताया जाता है।

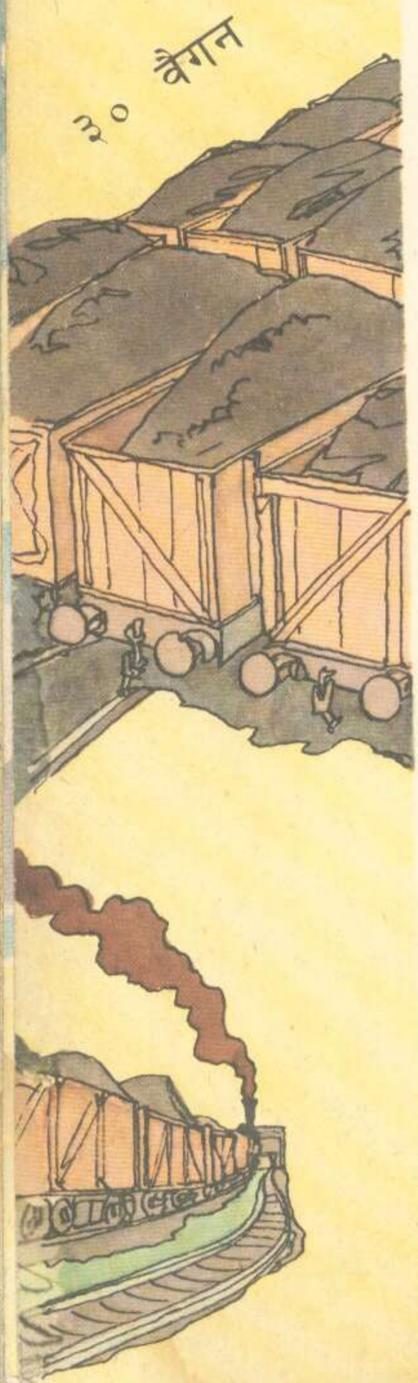
बल्ब, बत्तियां, टायर – सब कुछ कार फ़ैक्टरी में ठीक समय पर पहुंचना चाहिए। सही समय-सारणी के अनुसार, योजना के अनुसार ताकि कार फ़ैक्टरी के मज़दूर भी अपनी योजना के अनुसार ठीक-ठीक और अच्छी तरह काम कर सकें। नहीं तो कहीं जल्द-बाज़ी हो ज़ाए, तो कोई पेच ढीला रह सकता है, इंजन ठीक तरह से सेट हुए बिना रह जाएगा। और बस ऐसी कार बन जाएगी, जो बाहर से तो सुंदर होगी, पर अंदर से उसमें नुक्स होंगे। इसीलिए तो लोग कहते हैं कि जल्दबाज़ी में कोई काम ठीक से नहीं होता। और अगर योजना के अनुसार काम किया जाए, समय का, घंटों और मिनटों का ध्यान रखा जाए, तो ऐसी कारें बनेंगी, जो देर तक लोगों के काम आएगी, उनमें कोई खराबी नहीं पैदा होगी। यानी वे बड़ी अच्छी क्वालिटी की होंगी।

और सभी दूसरी मशीनें, उपकरण, खरादें, औज़ार भी अच्छी क्वालिटी के बनने चाहिए। क्वालिटी भी इतनी ही मूल्यवान है, जितना काम का एक मिनट।









और इस एक मिनट का मूल्य क्या है ?

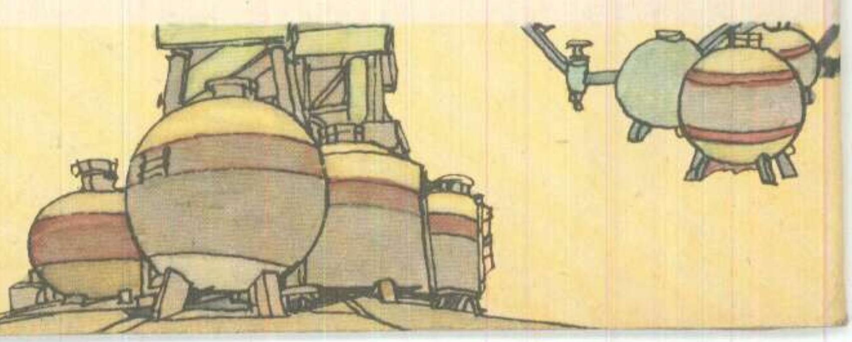
पता है, यह सोने से भी बढ़कर मूल्यवान है। तुम खुद ही सोचो। एक मिनट में सोवियत देश की कोयला खानों से तीस वैगन कोयला निकाला जाता है। इतना तेल खोदा जाता है कि उससे मालगाड़ी वाली २० टंकियां भरी जा सकती हैं। और इस मिनट में भट्ठियों से इस्पात निकलता है। इतना इस्पात की उससे तीन सौ कारें बन सकती हैं।

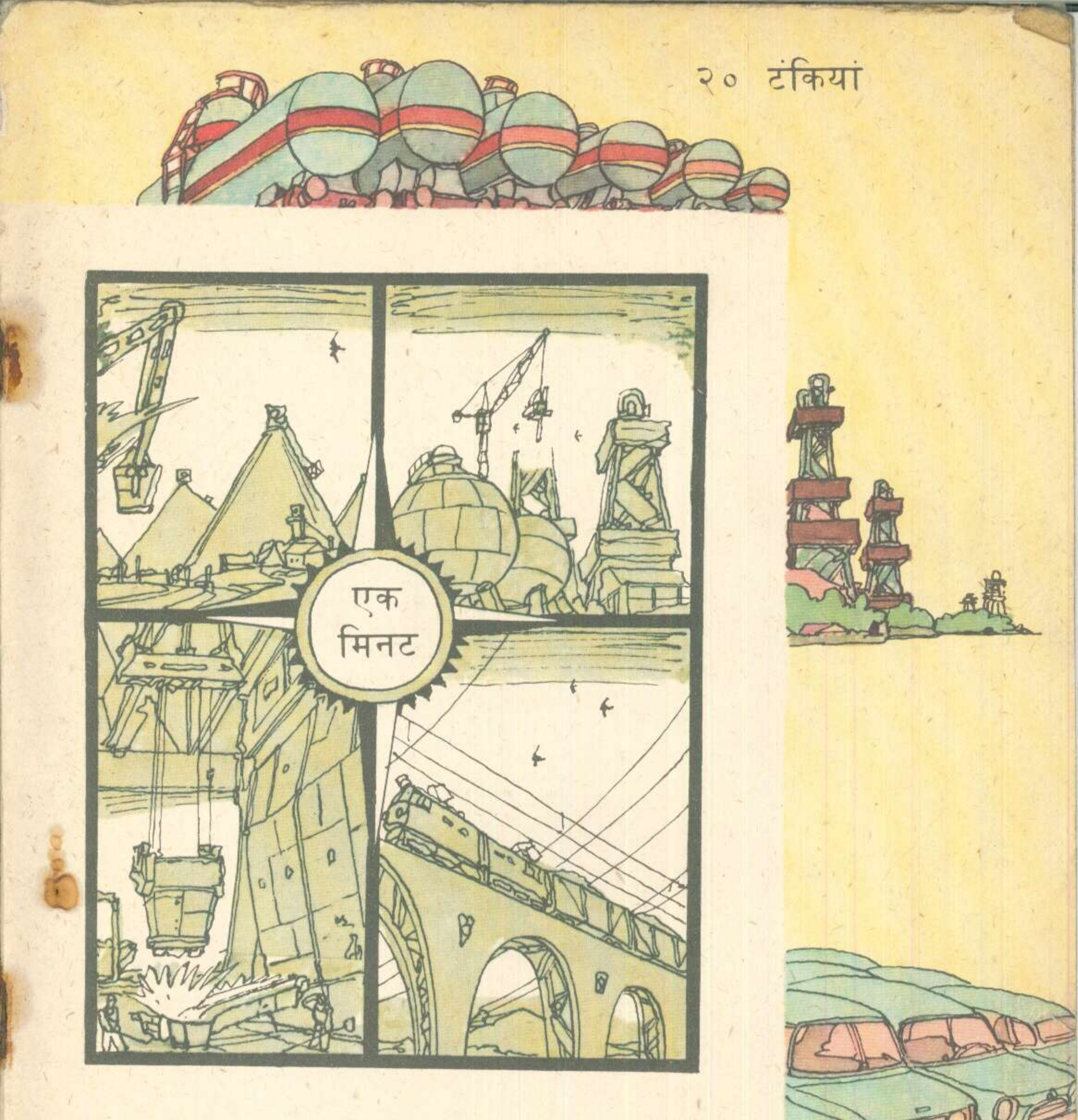
और इस एक मिनट में ... नहीं, सब चीज़ें तो गिनाई ही नहीं जा सकतीं! देश में कितनी ही फ़ैक्टरियां, मिलें हैं। तो देखा तुमने एक मिनट कितना मूल्यवान है।

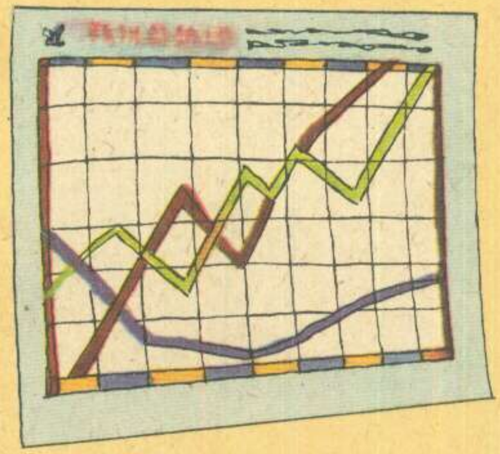
अब यह किताब पढ़कर तुम आधा घंटा या एक घंटा बड़े हो गए हो। समय आगे ही आगे बढ़ता जाता है।

कल ... कल होगा!






२० टंकियां
एक मिनट
३०० कारें



बरीस जुब्कोव

कल, आज और कल

चित्रकार: ई० कबाकोव

अनुवादक: योगेन्द्र नागपाल

हिन्दी अनुवाद ० बाल लोक प्रकाशन ० १९८२

Malysh Publishers
Moscow

Printed in the USSR